न्यायाधीश

श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय

अशोक पुस्तक-मन्दिर

१६२, महात्मा गान्धी रोड,

कलकत्ता—७

प्रकाशक
श्री परशुराम सिंह 'गौतम'
अशोक पुस्तक-मन्दिर
१६३, महात्मा गान्धी रोड,
कलकत्ता-७

प्रथम संस्करण
जुलाई, १९५७

मूल्य
२ रुपये ५० नये पैसे

अनुवादक
श्री वेणी माधव सिंह

आवरण चित्रकार
श्री ब्रजराय चौधरी

मुद्रक—
अशोक आर्ट प्रेस
२७, मल्लिक स्ट्रीट,
कलकत्ता—७

श्रद्धेय श्री राजशेखर बसु (परशुराम) को

प्रकाशक की ओर से

'न्यायाधीश' बंगाल के विख्यात कथाकार श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय के 'विचारक' का हिन्दी अनुवाद है। बंगला में यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय है कि दो महीने में ही इसके दो संस्करण हुए हैं।

ताराशंकर बाबू आदर्शवादी कथाकार हैं। प्रायः इनकी सभी रचनाओंमें विविध रूप से राष्ट्रीयता प्रस्फुटित हुई है। इन्होंने ग्राम्य-जीवन को अपनी रचनाओं का आधार बनाया है और निम्न तथा मध्यम श्रेणी के लोगों के सुख-दुःख, प्रेम-विरह तथा पारिवारिक जीवन आदि का सजीव एवं स्वाभाविक चित्रण करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। यही कारण है कि आज बंगला साहित्य में ताराशंकर बाबू सर्वश्रेष्ठ कथाकार माने जाते हैं। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है और अधिकांश के चलचित्र भी बन चुके हैं।

हम चाहते हैं कि भारत के इस विख्यात कथाकार के ग्रन्थों को हिंदी-संसार भी पढ़ कर लाभ उठावे और इसी उद्देश्य से हमने इनके ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की योजना बनायी है। आशा है, हिन्दी-संसार हमारी इस योजना से लाभ उठायेगा।

१० जुलाई, १९५७

रामसकल सिंह
संचालक
अशोक पुस्तक मन्दिर

एक

(क)

से शन अदालत में मामला चल रहा था। अभी मुकदमे का प्रारम्भ ही था।

मुफस्सिल की सेशन अदालत। पश्चिम बंगाल के पश्चिम ओर एक छोटा सा जिला। जिला साधारणतः शान्त; इसमें बहुत बड़ी खून-खराबियाँ या दंगे-फसाद नहीं होते। बीच-बीच में जो दो-चार दंगे या सिर फुड़ौवल हो जाती हैं, वे इस कृषि प्रधान अंचल में खेती-बारी के झगड़ों के कारण। कभी-कभी दो-एक दंगे या मारपीट स्त्री सम्बन्धी कानूनी बातों को लेकर भी होती रहती है। अधिकांश मामले नीची अदालतों में ही समाप्त हो जाते हैं, शायद ही दो-चार मुकदमे कानूनी उलझनों के कारण नीची अदालतों का घेरा तोड़ कर सेशन अदालत के दायरे में आते हैं। जैसे, साधारण चोरी, किन्तु चोर पाँच होने से डकैती के नाम से जजी अदालत तक पहुँच जाते हैं। खेती के सम्बन्ध में सिंचाई के जल के लिये मार-पीट जिसमें बहुत बड़ी से बड़ी चोट सिर फुड़ौवल, किन्तु दोनों तरफ लोगों की संख्या अधिक होने से बलवे के जुर्म में सेशन अदालत तक चले जाते हैं। इसी कारण यह जिला सरकारी क्षेत्र में विश्राम का जिला गिना जाता है, और बहुधा अधिक परिश्रम से, क्लान्त कर्मचारियों को विश्राम का सुयोग देने के लिये इस जिले में भेजा जाता है। किन्तु इस समय एक जटिल सेशन का मामला चल रहा है।

खून का मुकदमा। अदालत में लोगों की भीड़ है। यह मामला केवल खून का ही नहीं, विचित्र खून का है।

अशोक-स्तम्भ चिह्नित प्रतीक के नीचे ही विचारपति के आसन पर शान्त होकर बैठे थे ज्ञानेन्द्रनाथ। अचंचल, स्थिर, निरासक्त मुख, नेत्रों की दृष्टि अपलक। उनकी दृष्टि सामने की ओर फैली, किन्तु किसी पर जमी नहीं। सामने ही अदालत की दाहिनी ओर के बड़े दरवाजे की उस तरफ के बरामदे में लोगों का आवागमन। बरामदे के नीचे अदालत के अहाते सावन के मेघाच्छादित आकाश की रिमझिम वर्षा अथवा देवदारु पेड़ों की पत्तियों में वर्षा से भींगी हुई वायु के धक्के, सब घिसे हुए शीशे के उस पार के चित्र के समान अस्पष्ट हो गये हैं।

वहाँ एक आकार है, जिसमें जीवन के स्पन्दन का संकेत है किन्तु उसकी गतिशीलता नहीं; वह बन्द खिड़की के घिसे हुए शीशे से लगकर उस पार ही खो गया है। सरकारी वकील अपनी प्रारम्भिक वक्तृता में घटना पर घटना सजा कर मामले के पहले का विवरण वर्णन करते जा रहे थे। ज्ञानेन्द्र बाबू की दृष्टि मन की पटभूमि पर उन घटनाओं को एक के बाद एक तूली से अंकित करती जाती थी। कभी-कभी सामने की टेबिल पर फैले हुए उनके दाहिने हाथ की पेंसिल घूम उठती थी, अथवा अत्यन्त कोमलता से आघात करती थी। वह भी बहुत जोर एक मिनट के लिये ही।

अत्यन्त गम्भीर पुरुष। आयु साठ के नीचे ही। गौरवर्ण सुन्दर पुरुष, बलवान कर्मठ शरीर, किन्तु सिर के सब केश श्वेत। स्वच्छतापूर्वक हजामत किये हुए गोरे मुख पर नाक की दोनों ओर दो, और चौड़े कपाल

पर पंक्तिवद्ध कई रेखाओं ने उनके समस्त अंगों पर जैसे एक क्लान्त विषण्णता की छाया डाल दी है। लोग, विशेषकर वकील लोग—जो उनकी नौकरी के इतिहास के सम्बन्ध में जानते हैं, कहते हैं, कि ये रेखायें बहुत चिन्ता करने के कारण उत्पन्न हुई हैं। ज्ञानबाबू मुन्सिफ से आज जज हुए हैं, ऐसे अनेक होते हैं, किन्तु उनके जीवन में लिखे जितने फैसले अपील की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं, उतने और किसी के हुए ऐसा उन्हें ज्ञात नहीं। फैसला लिखने में इतना विचार करने की बात उन्होंने इससे अधिक नहीं सुनी है। केवल इतना ही नहीं, उनकी विचार-शक्ति की गम्भीरता बड़ी विस्मयकर है। प्रमाण-प्रयोग, गवाही-साखी की गहराई में डूबकर वे उसका ऐसा तथ्य आविष्कृत करते हैं कि सब कुछ का साधारण अर्थ और तथ्य का सत्य पूर्णतः बदल कर विपरीत हो जाता है। केवल इतना ही नहीं,—अपराध का न्याय करने में वे क्षमा नहीं करते। अपना एक निजी तुला दण्ड हाथ में लेकर वे छुरे की धार पर चल कर अन्तिम छोर पर पहुँचते हैं और तुलादण्ड के आधार पर जो आधेय जम जाता है, उसे अकम्पित हाथों से दे देते हैं, भले ही वह विष हो या अमृत हो।

(ख)

कर्म-क्लान्त ज्ञानेन्द्रनाथ विश्राम लेने के लिये ही इस छोटे एवं शान्त जिले में कई मास आगे आये हैं।इसी बीच वकीलों तथा अमलों में बहुतसी अफवाहें फैल गयी हैं। ज्ञानेन्द्रनाथ का अर्दली एक आधुनिक बंगाली युवक है। वह मैट्रिक फेल है। कौतूहली वकील और अमले उससे तरह-तरह

के प्रश्न करते हैं। ज्ञानेन्द्रनाथ साधारणतः अदालत तथा अपनी कोठी तक ही आबद्ध रहते हैं। क्लब के सदस्य तक नहीं हैं। इसे लेकर उच्चपदस्थ कर्मचारियों की भी पूछताछ का अन्त नहीं।

इस प्रसंग में वे कहते हैं—शायद ज्ञानेन्द्रनाथ कहते हैं कि उनकी स्त्री और पुस्तक ये ही दोनों उनके सर्वोत्तम मित्र हैं। वे और मित्रों की कामना नहीं करते।

उनके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं। कोई उन्हें शुचिवाई ग्रस्त ब्राह्म कहता है। कोई पूरा नास्तिक। कोई कहता है कि यह व्यक्ति जीवन में केवल नौकरी को ही सब कुछ समझता है। कोई कहता है नौकरी नहीं केवल कानून समझता है। पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म उसके लिये कुछ नहीं हैं, है केवल कानून-संगत और कानून-विरुद्ध; अंग्रेजी में जिसे कहते हैं, लीगल और इल्लीगल।

उनकी स्त्री सुरमा देवी भी जज की कन्या हैं। उनके बाप जस्टिस चटर्जी एक प्रसिद्ध विचारपति थे। अब भी लोग उनका नाम लेते हैं। बैरिस्टर से जज हुए थे। सुरमा देवी हैं एक शिक्षिता महिला। सुरमा देवी एक समय अत्यन्त सुन्दरी थीं। आज भी वह सौन्दर्य म्लान नहीं हुआ है। निस्सन्तान सुरमा देवी को देखकर अब भी पूर्ण यौवना युवती का भ्रम होता है। सुरमा देवी भी जैसे ठीक उनके समीप नहीं पहुँच पातीं।

जज साहब का अर्दली साहब की बातों में पंचमुख रहता है। वह कहता है—मेम साहब भी एक-एक समय हाँफ उठती हैं।

गर्दन हिलाते हुए हँस कर कहता है—रात के बारह बजे तो साहब के रात के नौ बजते हैं। बारह बजे मुझे छुट्टी मिलती है। मैं चुप-

चाप दरवाजे के बाहर स्टूल पर बैठा रहता हूं, मेम साहब टेबिल के सामने बैठी रहती हैं, साहब फाइलें उलटते हैं, सोचते हैं, और लिखते हैं। विचित्र पुरुष हैं, सिग्रेट नहीं, शराब नहीं, काफी नहीं, चाय दो कप दो बेला, बहुत हुआ और एकाध बार। चुपचाप लिखते जाते हैं। बीच-बीच में कागज उलटने का खर-खर शब्द होता है। कभी अकस्मात् बातें—एक अथवा दो बातें, पुस्तक दो तो। मेम साहब से। बारह बजा साथ ही उठ खड़े हुए। मुझसे कहते हैं—जाओ।

यहाँ के दो-चार वकील, वकीलों के मुहर्रिर और जजी अदालत के अमले ये सब बातें अर्दली से संग्रह करते हैं।

अर्दली कहता है—फिर महीने में पाँच-सात दिन दो बजे तक। मुझे अवश्य बारह बजे छुट्टी मिल जाती है, मैं चला जाता हूँ। सो जाता हूं। दो-ढाई बजे रोज एक बार मेरी नींद टूटती है। बचपन से अभ्यास है। उठकर देखता हूँ साहब अभी तक जगे हैं, घर में प्रकाश जल रहा है। अब इसमें मुझे आश्चर्य नहीं होता, पहले चौंक पड़ता था। स्वामी के बिना पुकारे जाता किस प्रकार? जाने का साहस नहीं होता, चुपके-चुपके कमरे की खिड़की के पास खड़ा हो जाता। देखता साहब टेबिल पर झुक कर उस समय भी लिख रहे हैं। कभी-कभी चट्टी की आहट होती, जान जाता वे घर के भीतर टहल रहे हैं, किसी-किसी दिन स्नानघर में प्रकाश जलता, पानी गिरने का शब्द होता, समझ लेता साहब सिर धो रहे हैं। इधर सोफे पर मेम साहब सोयी रहती हैं खट-खट शब्द होते ही जग उठती हैं।

कहती हैं—समाप्त हुआ? कभी-कभी मेम साहब झगड़ा करती हैं।

अभी तो उसी दिन। मैं उठकर बाहर आया: देखा मेम साहब दरवाजा खोल कर बाहर निकलीं। खानसामा को पुकारा—शिवनन्दन! अरे!

भीतर से साहब बोले—ना, ना। यह क्या करती हो? उसे क्यों पुकारती हो?

मेम साहब ने कहा—आराम कुर्सी बाहर निकालो।

—मैं स्वयं निकालता हूँ। वे समस्त दिन परिश्रम कर सो रहे हैं। मत पुकारो। दिन भर खटने के बाद रात में न सोने से वे कैसे काम कर सकेंगे? मनुष्य हैं न!

अर्दली विस्मय प्रकाश करने का अभिनय कर कहता है—देखता हूं साहब स्वयं आराम कुर्सी खींच कर बाहर निकाल रहे हैं। मैं दौड़ता जा रहा था। किन्तु मेम साहब ने झगड़ा शुरू कर दिया। अब कैसे जाता? चुपचाप खड़ा-खड़ा सुनता रहा। मेम साहब बोलीं—अर्दली गप्पें हाँकता जाता है—सुरमा ने वास्तव में उस दिन क्रोध में कहा था—दुनिया में सभी मनुष्य हैं। रात में नींद न आने से किसी की भी नहीं चलती। चलती है सुना है केवल भगवान की। मैं नहीं जानती थी कि जजगिरी और भगवानगिरी में अन्तर नहीं है। इसके बाद बोली, फिर यही क्यों? मेरे पिताजी भी तो जज थे।

ज्ञानेन्द्रनाथ हँस पड़े। हँसते-हँसते और एक कुर्सी लाकर रखने के बाद बोले—बैठो।

उस दिन उस समय फैसला लिखना खतम हो गया था। सुरमा ने भी जान लिया था। वे स्वामी का मुख देखकर ही जान लेती हैं। फैसला लिखना खतम न होने पर सुरमा बात ही नहीं करतीं। वे ही दो-चार

बातें—काफी पियोगे ? टेबिल फैन लानेको कहूं ? यही। उस समय अधिक बातें करने का उपाय नहीं रहता। बोलने पर ज्ञानेन्द्रनाथ कहते हैं, कृपया, अभी नहीं, जो कहना हो, बाद में कहना।

फैसला लिखना समाप्त हो जाने पर वे जैसे बदल से जाते हैं। उस दिन सुरमा ने कहा था—मुन्सिफ से तो जज हुए हो। बाल-बच्चे नहीं हैं। फिर क्यों ? अब क्या होगे ? हाईकोर्ट के जज या सुप्रीम कोर्ट के जज ? ओह ! अभी भी आकांक्षा नहीं गयी ?

ज्ञानेन्द्रनाथ की एक अभ्यास की हुई हँसी है। वही हँसी हँस कर बोले थे—नहीं। अब मुझे आकांक्षा नहीं है। ठीक समय पर अवकाश ग्रहण करूँगा, इसके बाद प्रथम पुस्तक का आदेश मानकर चलूँगा। गेट अप ऐट फाइव, गो टू बेड ऐट नाइन। वही क्यों, ऐट। सबेरे उठ कर मार्निंग वाक करूँगा, इसके बाद थैला लेकर बाजार जाऊँगा। तीसरे पहर मार्केट जाकर तुम्हारे भाग्य के अनुसार ऊन-सूत खरीद लाऊँगा। और घर में तुम बकोगी, मैं सुनूँगा। किन्तु जब तक नौकरी में हूँ, मुझे छुट्टी नहीं।

और एक दिन, समझते हैं—अर्दली कहता है और एक दिन की बात है।

सुरमा ने कहा था—अच्छा बतला सकते हो कि संसार में कोई ऐसा भी मनुष्य है, जिससे भूल न हो ?

ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा था—ना, नहीं।

सुरमा ने कहा था—तो फिर ?

—तो फिर क्या ?

—यह जो तुम सोचते हो कि तुम्हारा फैसला ऐसा होगा कि विश्व-

ब्रह्माण्ड में कोई उसे बदल नहीं सकेगा। हाईकोर्ट नहीं, सुप्रीम कोर्ट भी नहीं। ऐसा दम्भ तुम्हें क्यों है ?

'दम्भ' ज्ञानेन्द्रनाथ ठठाकर हँस पड़े। अर्दली कहता है—कैसी विचित्र हँसी! समझते हैं न। जैसे मेम साहब ने बिलकुल बच्चे जैसी बातें कह दी हों। मेमसाहब को क्रोध आ गया, बोली—हँसते क्यों हो ? इसमें हँसी की क्या बात है ?

साहब ने कहा—तुमने दम्भ, हाईकोर्ट, सुप्रीम कोर्ट के विषय में कहा है, इसीलिये।

मेम साहब बोली—भूल हो गयी। भगवान भी नहीं बदल सकते, मुझे ऐसा कहना चाहता था।

ज्ञानेन्द्रनाथ गम्भीर हो गये थे, कहा था—उहूँ। उन सब किसी के लिये नहीं सुरमा। यह सोचकर हँसा था कि स्त्रियाँ चिरकाल तक बालिकायें ही रह जाती हैं।

—इसका अर्थ ?

—अर्थ ? तुम तो अच्छी तरह जानती हो सुरमा। और यह बात मेरी नहीं है मेरे गुरु, तुम्हारे पिताजी की है। दम्भ नहीं, हाईकोर्ट में फैसला ठहरेगा कि नहीं यह भी नहीं, यह कभी नहीं सोचता। सोचता हूँ आज मैंने जो फैसला दिया है, दो मास, या छः मास या छः वर्ष के पश्चात् उसमें भूल जानकर अपने पर स्वयं ही आलोचना न कर दूँ। अन्तमें बहुत क्रोध में आकर तुमने भगवान की बात कही है। बीच-बीच में जजगिरी और भगवानगिरी की तुलना भी करती हो—

सुरमा ने उस दिन स्वामी की बात पर ही बात कह दी थी। उन्होंने

आघात करते हुए कहा था—नहीं, ऐसा तो मैंने कभी नहीं कहा। मैं कहती हूँ, मेरे पिताजी भी जज थे, उनको तो ऐसा देखा नहीं, और भी अनेक जज हैं, उनको भी ऐसा सुना नहीं। मैं कहती हूँ, तुम्हारी जज-गिरी और भगवानगिरी में अन्तर नहीं। हाँ, ऐसा ही कहती हूँ। तुम्हें देखकर कम से कम मुझे तो ऐसा ही लगता है।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने दोनों नेत्र बन्द कर शान्त भाव से मीठी हँसी हँसते हुए कहा था—अच्छा। मेरी जजगिरी और भगवानगिरी की बात कहती हो। अवश्य ही भगवान में ठीक विश्वास नहीं करता, यह तुम जानती हो, फिर भी जब तुमने तुलना कर दी, तो भगवानगिरी के जो सब वर्णन लोग करते हैं,—अच्छी-अच्छी पोथियों में लिखा है—उन्हीं को सत्य मानकर कहता हूँ कि मेरी जजगिरी भगवानगिरी से भी कठिन है। कारण, भग-वान सर्वशक्तिमान हैं, उनके ऊपर मालिक कोई नहीं, सूक्ष्म न्यायकर्त्ता अवश्य हैं, किन्तु हैं स्वच्छन्द करुणा करने में उन्हें बाधा नहीं है। इच्छा करने से ही अपराधी को दोषी जानते हुए भी बेकसूर माफी देकर छोड़ सकते हैं। पाप-पुण्य का तलपट तैयार कर पुण्य अधिक होने पर पापों के अभियोग पत्र को रद्दी टोकरी में फेंक सकते हैं। किन्तु मनुष्य जज ऐसा नहीं कर सकता। मैं तो कर ही नहीं सकता।

बार लाइब्रेरी से लेकर अदालत के सामने के बरगद के नीचे तक इसी प्रकार की बातों के बीच इस मनुष्य की समालोचना दिन में एकाध बार हुए बिना नहीं रहती।

(ग)

सरकारी वकील अत्यन्त सावधानी से मामले की घटनाओं का वर्णन करते जा रहे थे। अविनाश बाबू प्रवीण और विलक्षण वकील हैं। वक्ता के हिसाब से सुनिपुण और कानूनज्ञाता के हिसाब से तीव्र बुद्धि। इस विचारपति को वे खूब अच्छी तरह पहचानते हैं। अर्दली की बातों से नहीं, अपने अनुभवों से। और इस जिले में आने के बाद से नहीं इससे बहुत पहले से। वे उस समय सरकारी वकील नहीं थे, उस समय उनकी ख्याति का प्रारम्भिक काल था। आस-पास के जिलों से उनकी पुकार शुरू हुई थी। जीवन में प्रतिष्ठा जब पहले-पहल आती है, तो अकेली नहीं आती। जल-स्रोत के वेग के साथ कल्लोल-ध्वनि के समान अहंकार भी साथ लाती है। उस समय उनमें वह अहंकार भी था। एक सेशन के मुकदमे में अभियुक्त का पक्ष समर्थन करने गये थे। उस मामले में उन्होंने उनका जैसा तिरस्कार किया था, वे उसको आज भी नहीं भुला सके हैं। आज भी बीच-बीच में हठात् स्मरण हो आता है।

वह भी विचित्र घटना थी। बाप के खून के अपराध में अभियुक्त था पुत्र। साठ वर्ष का वृद्ध बाप, पैंतीस वर्ष का जवान पुत्र! वह भी दो पुत्रों का बाप। मामले की प्रधान साक्षी थी माँ। पुत्र करतबी पुरुष। जैसा बलवान शरीर, वैसा ही अदम्य साहस, उसी प्रकार निपुण विषय-बुद्धि। प्रथम यौवन से ही बाप से अलग।

बाप था वैष्णव, धर्मभीरु मनुष्य। सात बीघे जमीन, एक छोटा अखाड़ा उसकी सम्पत्ति थी। उसके साथ ही थीं ग्राम्य की कई वृत्तियाँ। कार्तिक मास में सेवा, बारहों मास त्यौहारों, झूलन, रास, होली, जन्माष्टमी, नन्दो-

त्सव में नाम-कीर्तन और शवयात्रा में संकीर्तन गाता, इसके लिये ग्राम्य वृत्तियाँ थीं। इनसे ही उसका काम चल जाता। पुत्र था अन्य प्रकृति का, प्रारम्भ से ही उसने यह मार्ग छोड़कर विषय का मार्ग पकड़ लिया था। खेती में मजदूरी से शुरू कर क्रमशः किसानी, इसके बाद बैल खरीद कर साझे की खेती, और इसके बाद जमीन खरीद कर किसान गृहस्थ बन गया था। इसमें बाप ने आपत्ति नहीं की; प्रशंसा ही करता। किन्तु इसके बाद पुत्र की बुद्धि जैसे असाधारण तीक्ष्ण हो गयी। अपनी जमीन के पास के खेतों की मेड़ें काटनी शुरू कर दीं, और ऐसी चतुराई से काटने लगा कि अंगच्छेद की पीड़ा जब अनुभव हुआ, तो देखा गया कि कब कितने दिन पहले जो अंग कट गया है, यह जिसकी जमीन का अंग कट गया है, वह भी नहीं बतला सकता। अकस्मात आवश्यकता के समय अर्थात् जोतते समय देखा जाता कि बलाईदास का छोटा खेत बढ़ गया है और दूसरे का बड़ा खेत छोटा हो गया है। और उस समय जब कटी हुई जमीन के मालिक सीमा नापने जाता तो बलाई उसे धक्के देकर हटा देता। जोर करने पर लाठी उठाता। नोटिस देने पर अदालत के खुले दरवाजे की ओर जाता और नोटिस अमान्य कर चला आता।

बाप ने अनेक हितोपदेश दिये, किन्तु पुत्र ने सुना नहीं। धर्म का भय दिखाने पर पुत्र निर्भय जोर से हँसकर चला जाता। उधर घर में भी उस समय सास और पुत्रबधू में विरोध हो गया था। वैष्णव परिवार में बहू केवल प्याज घुसेड़ कर ही शान्त न होती, उसने मछली भी घुसेड़ी थी और पुत्र ने उसका समर्थन किया था। एक दिन माँ और बहू के झगड़े में बलाईदास ने माँ को गालियाँ दीं और स्त्री का हाथ पकड़ कर घर से

निकल गयो। एक अन्न और एक घर में वह अब नहीं रहेगा। उसकी चल नहीं सकती। उसने घर के पास ही नया घर बनाया था। बाप शान्ति की साँस लेकर बच गया था—जय महाप्रभु, तुमने मुझे बचा लिया।

उसके बलाईदास का काम अबाध गति से चल रहा था। इससे बाप ने सिर नीचा कर अपनी मृत्यु-कामना की थी, हठात् पुत्रवधू दो पुत्रों को छोड़ चल बसी। बलाईदास ने स्त्री के श्राद्ध में वैष्णव-भोजन के अन्त में बन्धु-बान्धवों को भोजन कराया था, मद्य-मांस के सहयोग से और इसे छिपाने की भी चेष्टा नहीं की थी। स्वयं ही मत्त होकर रास्ते-रास्ते स्त्री के लिये रोकर कहता फिरा—उसके जीने की इच्छा नहीं है, किसी प्रकार भी सुख नहीं, वह परित्याग कर चला जायगा। संन्यासी हो जायगा।

बाप ने महाप्रभु के दरवाजे पर सिर पीटा और पुत्र के घर जाकर उसका बड़ा तिरस्कार किया। बलाईदास ने उत्तर-प्रत्युत्तर नहीं किया, किन्तु उसको स्वीकार कर लिया ऐसा भी नहीं जान पड़ा। वह उठकर चला गया।

तीन दिन के बाद सबेरे उठ कर बाप ने रास्ते में आते ही देखा कि बलाईदास के घर का दरवाजा खोलकर बाहर निकल रही है, अतर नाम की एक व्यभिचारिणी, ग्राम की अवनत जाति की एक स्त्री। वह अपने घर से निकल कर चली गयी थी। वह झुमुर दल में नाचती-गाती और उसके साथ शरीर का व्यवसाय करती-फिरती। बीच-बीच में दो-दस दिनों के लिये गाँव में आती। अतर कई दिनों से अभी गाँव में ही है।

बापने पुत्र को बुला कर उसके पैर पर सिर रख दिया था। ऐसा अधर्म करो न। नहीं सहा जायगा। व्यभिचार सबसे बड़ा पाप है।

उसने हाथ पकड़ कर कहा था—तू फिर ब्याह कर ले।

बलाईदास उस समय अन्धा हो गया था। अथवा शायद उन्मत्त था। केवल अतर ही नहीं, गाँव में और जो कई व्यभिचारिणियाँ थीं, उसने उनको लेकर जीवन-समारोह बाँध दिया था। अनुरोध व्यर्थ गया, उसका अवश्यम्भावी फल हुआ विरोध। विरोध के अन्तमें सदा के लिये विच्छेद आ खड़ा हुआ।

बाप ने संकल्प किया कि पुत्र को त्याज्यपुत्र करेगा। उसने अपनी सात बीघा भूमि देवता के नाम अर्पण कर भविष्यत् के लिये नातियों को सेवायत महन्त नियुक्त किया। उसने शर्त की कि मति-भ्रष्ट, व्यभिचारी बलाईदास उनका अभिभावक नहीं हो सकेगा। उसके मरने पर उसकी स्त्री सेवायत और नातियों की अभिभाविका होगी। उसकी स्त्री के मरते समय यदि नाती नाबालिग रहें, तो ग्राम के पंच किसी वैष्णव को अभिभावक नियुक्त कर देंगे। पुत्र खबर पा आकर खड़ा हो गया। बाप ने पीछे घूम कर बैठे हुए कहा—इस घर से तू निकल जा! निकल जा! निकल जा। यह घर मेरा है, इसमें कभी न आना। मेरा धर्म नष्ट हो जायगा! मरते समय भी मेरे मुँह में तू जल न देना, मुखाग्नि न करना, श्राद्ध भी नहीं। भगवान यदि आज मेरे नेत्र ले लें, तो बच जाऊँ, जिससे तेरा मुँह मुझे और देखना न पड़े।

दूसरे दिन रात में बाप का खून हो गया। गर्मी का दिन। दरवाजे पर एक ओर सोया था वृद्ध और दूसरी ओर दोनों नातियों को लेकर वृद्धा सोयी थी। गहरी रात में गड़ासे से कोई वृद्ध के सिर दो टुकड़े कर गया। एक चीत्कार सुन घबड़ा कर वृद्धा उठ बैठी और हत्यारे को भाग

कर दरवाजा पार करते हुए जाते देखकर पहचान ली कि वह उसका पुत्र है। सिर पर चोट एक नहीं, दो। एक चोट—जान पड़ता है पहली—पड़ी थी एक ओर, दूसरी ठीक बीच में। माँ ने साक्षी दी, धुँधला अन्धकार था, उस समय चाँद शीघ्र डूबा था, इसी बीच वह आदमी भाग गया, उसको उसने स्पष्ट देखा। वह उसका पुत्र बलाई था।

बलाईदास ने अविनाश बाबू को वकील किया था। कुछ भूमि हजार रुपये में बेंच दी और फौजदारी मुकदमे में उनका नाम सुनकर आदमी भेजा और उन्हें नियुक्त किया था। अविनाशबाबू ने जिरह करने में कुछ उठा नहीं रखा। माँ ने केवल एक बात कही—बाबा—

अवसर पाकर अविनाशबाबू ने धमकी दी—नहीं, बाबा नहीं। बाबा-टाबा नहीं। बोलो, हुजूर।

माँ ने कहा—हुजूर, माँ को क्या पुत्र के पहचानने में भूल होती है? मैं चालीस वर्षों से उसकी माँ हूँ। दोपहर के समय खेत से लौटने पर उसकी पीठ पर मैंने रोज तेल की मालिश की है।

अविनाश बाबू ने कहा—पुत्र के साथ तुम्हारा झगड़ा पुराना है। आज बीस बरसों से है। पुत्र के विवाह होने के साथ ही उससे तुम्हारा मनोमालिन्य है। तुम लोगों में झगड़े हुआ करते थे। बोलो, सत्य है कि नहीं?

माँ बोली—इसमें थोड़ी सचाई है। किन्तु वह मनोमालिन्य नहीं है, हुजूर। उसकी स्त्री……। स्त्री के लिये ही उसने प्याज-मछली खाना सीखा था, उसीके लिये तो अलग हुआ था, उसीको लेकर बकझक होती थी। केवल बकझक और कुछ नहीं।

अविनाश बाबू ने कहा था—नहीं। मैं कहता हूँ कि उसी क्रोध में आकर तुम कह रही हो कि तुमने पहचान लिया है। नहीं तो, असल में तुमने पहचाना नहीं है।

माँ बोली थी—मैंने पहचान लिया है हुजूर। मुझे क्रोध भी नहीं है। वह मेरा अपना पुत्र है। धर्म का मुँह देख कर—माँ इतना कहकर रुक गयी थी। उसका गला भर आया था। अविनाशबाबू ने उसे रोने का अवसर नहीं दिया, साथ ही साथ बोल उठे थे—धर्म का मुँह देखकर? अनाप-शनाप मत बको। बलपूर्वक रोने की चेष्टा मत करो। बोलो क्या कहती हो?

माँ साहसी स्त्री थी, उसने आत्म-सम्बरण कर कहा—नहीं, रोऊँगी नहीं हुजूर, धर्म का मुँह देखकर सत्य बात ही मुझे कहनी पड़ेगी, हुजूर। अगर मैं झूठ बोलूँ, तो शायद वह यहाँ छूट जाय। किन्तु परलोक में उसका क्या होगा? मरना तो एक दिन है ही। मैं ही उसके बाप से क्या कहूँगी? मैं सत्य ही कह रही हूँ। हुजूर के न्याय करके छोड़ देने से भगवान छोड़ देंगे, और सजा देने पर उसी सजा में उसके पाप का दण्ड हो जायगा। उसे नर्क में नहीं जाना पड़ेगा।

अविनाशबाबू ने इस बार ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था। उन्होंने जिरह की—तुम पाप-पुण्य मानती हो?

माँ बोली—मानती क्यों नहीं हुजूर! कौन नहीं मानता? नहीं तो रात-दिन कैसे होते?

अविनाशबाबू ने धमकाया—रुको, व्यर्थ मत बको। सैंतीस वर्ष पहले बर्दवान जिले में मजिस्ट्रेट की अदालत में तुमने एक बार इजहार दिया था?

वृद्धा ने थोड़ा चौंक कर मुँह उठाया और स्थिर दृष्टि से अविनाश बाबू के मुँह की ओर देखा।

कठोर स्वर में अविनाशबाबू बोले—बोलो, उत्तर दो।

वृद्धा ने कहा—हाँ, दिया था।

—वह कैसा मामला था?

—मैं अपने बाप के घर से निकल आयी थी अपने इसी स्वामी के संग। मेरे पिता ने वह मामला किया था मेरे स्वामी के नाम से। उसी मामले में मैंने साक्षी दी थी।

—तुम्हारे पिता का नाम था शरदहरी भट्टाचार्य? तुम ब्राह्मण की कन्या थी?

—हाँ।

—जिसके संग निकल आयी थी, वह किस जाति का था?

—सद्‌गोप। हमारे घर के पास ही उनका घर था। बचपन से उनकी बहिन के साथ खेलती थी, उनके घर जाती थी। इसके बाद प्रेम हो गया। जब मुझे मालूम हो गया कि उसके बिना मैं नहीं बचूँगी, तो उसके साथ मैं घर से निकल आयी। दोनों ने प्रेम-विवाह किया। मामला उसी समय हुआ था।

—तुमने क्या कहा था इजहार में?

—मैंने कहा था—मैं बाप नहीं चाहती, माँ नहीं चाहती, धर्म नहीं चाहती, मैं उसके बिना जी नहीं सकती। वही मेरे सब कुछ है—पाप-पुण्य सब कुछ। उसके साथ अगर नर्क जाना पड़े तो भी मैं जाऊँगी।

मामले में सवाल-जवाब के समय अविनाश बाबू ने माँ के चरित्र के इसी पक्ष पर अधिक जोर दिया। नारी-चरित्र की एक विचित्र विशेषता का विश्लेषण करते हुए कहा—इस स्त्री का अतीत इतिहास इसका साक्षी दे रहा है कि नारी जीवन के सनातन पुरुष के लिये—बाप, माँ, जाति, कुल, धर्म-अधर्म सबको अनायास खेल-खेल में त्याग सकती है। स्त्रियाँ जीवन के अन्तिम दिनों तक, जान पड़ता है कि इसी लज्जाजनक मोह में मग्न और अन्धी बनी रहती हैं। ये सन्तान को भी त्याग कर अनायास चली जाती हैं, अवैध प्रेम के प्रचण्ड आकर्षण से, देहवाद की राक्षसी भूख से पीड़ित होकर। यह स्त्री जब आज धर्म का नाम लेती है, तो सारा संसार हँसता है, किन्तु यह उसे समझ नहीं पाती। प्रतिहिंसा के कारण जिस धर्म को वह नहीं मानती, उसी की आज दुहाई दे रही है। असल में उसने हत्यारे को पहचान नहीं पाया है। उसी अत्यल्प समय में जिस समय वह स्वामी की चिल्लाहट सुनकर जगी और मसहरी हटाकर बाहर निकली थी, उस समय हत्यारा घर का दरवाजा पार कर भाग रहा था, इसी बीच रात के अँधेरे में किसी को पहचानना असम्भव था। वह पहचान नहीं सकी। शायद उसने किसी को देखा भी नहीं। उसके जागते-जागते हत्यारा भाग गया था, उस उत्तेजित अवस्था में उसने जो देखा था, वह उसके मन की कल्पना का झूठा प्रतिबिम्ब था। वह पुत्र को प्रारम्भ से ही नहीं देख सकती थी। इस पर पुत्र के साथ स्वामी का विरोध हो गया था। इसीलिये उसके मनमें हो गया था कि पुत्र ही हत्यारा है, और उसीको उसने कल्पना-नेत्र से देखा था। यह नारी माँ नहीं, मातृत्व-हीना विचित्र चरित्रवाली पापिष्ठा है। आप लोगों ने देखा है कि माँ होकर

पुत्र को हत्यारा घोषित करते समय एक बूँद आँसू तक इसके नेत्रों से नहीं निकला।

अविनाश बाबू सदा जोरदार वक्तृता देते हैं। उस मामले में उन्होंने इसी तथ्य के आधार पर दिल खोलकर वक्तृता दी। इसको छोड़ अन्य कोई मार्ग ही नहीं था, एवं जूरियों को सहमत करने में सफल भी हुए। उन्होंने इस बात पर विश्वास कर लिया कि—स्वामी के प्रति अत्यधिक आसक्ति से वशीभूत होकर और पुत्र के विवाह के बाद से पुत्र-वधू के प्रति उसके आकर्षण के कारण पुत्र के लिये अपने सहज द्वेष की प्रेरणा से ही अनजान में उसने पुत्र को ही हत्यारा मान लिया है; ऐसे समय जल्द ही नींद टूटने पर अज्ञात हत्यारे को पुत्र समझ लेना ही पूर्णतः स्वाभाविक है। अतएव उन्होंने सन्देह के सुयोग से अर्थात् बेनिफिट आफ डाउट के अधिकार से अभियुक्त को निर्दोष बतलाया। किन्तु इस कठिन व्यक्ति ने जूरियों से असहमत होकर अभियुक्त को दोषी सिद्ध किया। और अपने फैसले में अविनाश बाबू के वक्तव्य की तीव्र समालोचना कर उसे चूर-चूर कर दिया।

अपने फैसले में उन्होंने लिखा था—इस माँ की साक्षी को मैं अकृत्रिम सत्य मानता हूँ। अभियुक्त पक्ष के विद्वान एडवोकेट ने उसके चरित्र को जिस प्रकार कालिमामय करने की चेष्टा की है वह केवल विचार की भ्रान्ति ही नहीं, वरन् मुझे साभिप्राय जान पड़ती है। साक्षी यह माँ पूर्णतः स्वस्थ और स्वाभाविक चरित्र की नारी है। उसके जीवन में प्रबल शारीरिक आसक्ति, या व्याधि का लक्षण, कुछ भी नहीं है वरन् मैंने उसके जीवन में एक सूक्ष्म स्वस्थ विचार का आभास पाया है। उसने

प्रथम यौवन की कुमारी अवस्था में-एक असमवर्ण युवक से प्रेम किया था। उसने उस प्रेम के आधार में शरीर-लालसा की प्रधानता किसी दिन स्वीकार नहीं की। उसने अपने पड़ोसी के पुत्र, बचपन की सहेली के भाई के साथ लम्बे परिचय और प्रेम को तिल-तिल कर बढ़ाया। मन के साथ मन की अन्तरङ्गता हो गयी। अकस्मात् किसी स्वस्थ, सबल और रूपवान युवक को देखकर युवती के मन में जो विकार उत्पन्न होता है, उसे उन्मत्त कर देता है,—यह वह नहीं है। यह अनुभूति पूर्णतः मन की अनुभूति है। इसी अनुभूति के कारण हृदयावेग से उसने गृह, कुल और जाति का त्याग किया था, वह समाज के विचार से पाप हो सकता है, किन्तु मनुष्यता के विचार से अन्याय नहीं है, अधर्म नहीं है, अस्वस्थकर नहीं है। समाज और मनुष्यता के विचार सर्वत्र एकमत नहीं हो सकते, इसीलिये तो आजकल कानून मानवता के विचारों के आधार पर बनाये जाते हैं। जो कुछ समाज के विचार में पाप है, उसी सूत्र के अनुसार सब जगह कानून के विचार से दण्डनीय नहीं होता, अपराध भी नहीं माना जाता। जिसको उन्होंने देह-लालसा कही है—कानून के विचार से मेरी दृष्टि में वही सर्वजयी प्रेम—पैशन आफ लाइफ-है। उसके लिये वह मर्मान्तिक मूल्य देकर भी वह अनुतप्त नहीं है, लज्जित नहीं है—और परवर्ती जीवन के आचरणों में वह एक विवाहिता साध्वी स्त्री के समस्त कर्तव्य असीम निष्ठापूर्वक पालन करती आयी है। इस माँ ने वेदनापूर्वक धर्म का मुँह देखकर पुत्र के विरुद्ध साक्षी दी है, उसको मैं डिवाइन, स्वर्गीय, पवित्र कहता हूँ।

आश्चर्य है कि सुविज्ञ एडवोकेट महाशय ने इस अभागिनी माँ के

साक्षी देते समय वेदनार्तता और धर्मज्ञान या सनातन नीति-ज्ञान का मर्मान्तक द्वन्द्व जैसे इच्छापूर्वक ही लक्ष्य नहीं किया। उन्होंने कहा है कि—साक्षी देते समय पुत्र को फाँसी हो सकती है, यह जानकर भी उसकी आँखों से जल नहीं निकला है।

हाईकोर्ट ने ज्ञानेन्द्रनाथ के फैसले को ही मान लिया था।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने अभियुक्त अर्थात् उस पुत्र को प्राणदण्ड दिया था। इस दण्डाज्ञा को भी घोषणा के इतिहास में साधारण नाम नहीं दिया जा सकता। इसको असाधारण ही कहना पड़ेगा। अविनाशबाबू ने एक दूसरे केस में वहाँ जाकर उसका इतिहास सुना था। तीन दिन तक उनकी अद्भुत स्तब्ध अवस्था होगयी थी, तीन रातों तक वे सोये नहीं, सब कुछ लिखने के बाद उस दण्डाज्ञा की कुछ लाइनें असमाप्त रखकर वे लगातार टहलते रहे। इधर उच्चपदस्थ कर्मचारियों में एक प्रकार की चिन्ता व्याप्त हो गयी। ज्ञानबाबू के बिना सोये रात बिताने की बात उनके कानों में पड़ने से बाकी न रही। सिविलसर्जन आये थे, मजिस्ट्रेट के साथ-साथ आये थे एस० पी०। जो एस० डी० ओ० हैं, वे भी आये थे। अन्तमें नये जज साहब क्या फाँसी का हुक्म देंगे ? इनको उपस्थित रह कर दण्डाज्ञा को कार्य में परिणत करना पड़ेगा।

प्रातःकाल, धुँधले अँधेरे में फाँसी का मंच देखने में अद्भुत जान पड़ेगा। वह मृत्यु पुरी के अकस्मात खुलने वाले दरवाजे के समान लगेगा। जान पड़ेगा कि दरवाजे के चारों ओर के काठों से उसके दोनों किवाड़ छिप गये हैं, और खुला हुआ दरवाजा मृत्यु के ग्रास के समान मुँह बाये हुए है। इसके बाद दूर से सम्भवतः अभागे का कातर आर्तनाद उठेगा।

सम्भवतः उठा कर लाया जायगा, एक हाड़-माँस का विह्वल बोझ। ओफ!
इसके बाद दण्डादेश पढ़ना पड़ेगा। दण्ड पाये हुए अभागे के सिर पर काली टोपी पहना दी जायगी। ओफ!

सिविलसर्जन ने कहा था—इस जेल में आज तीस वर्षों से फाँसी नहीं हुई। गैलोज तक नष्ट हो गया है। केवल एक टिवी बची है। सबको नया बनाना पड़ेगा।

मैजिस्ट्रेट साहब भी विचलित हुए थे।

वे परामर्श कर ज्ञानेन्द्रबाबू की कोठी पर आये थे। उन्होंने संकेत से अनुरोध भी किया था।

ज्ञान बाबू ने कहा था—तीन दिन मैं सोया नहीं। केवल सोचता रहा।

मैजिस्ट्रेट बोले—मैंने सुना है। मनुष्य को डेथ सेण्टेंस (मृत्यु दण्ड) देने से अधिक यंत्रणादायक कर्तव्य और कुछ नहीं है।

ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा—मेरी स्त्री भी खूब विचलित हुई है। वे जैसे मेरे मुँह की ओर देख नहीं पा रही हैं, किन्तु मैं क्या करूँ?

वास्तव में सुरमा देवी अत्यन्त विचलित हुई थीं। उन्होंने भय के साथ कहा था—तुम क्या फाँसी का हुक्म दोगे?

पहले तो ज्ञानेन्द्र बाबू उत्तर नहीं दे सके। बहुत देर बाद कहा—उसकी माँ ने साक्षी में जो बातें कही हैं, उसके बाद वह दण्ड छोड़ मैं क्या कर सकता हूँ?

सुरमा देवी इसके बाद क्या कहतीं? किन्तु उन्होंने कहा—उसकी माँ की ही बात सोचो! उस अभागिनी का और क्या रह जायगा?

—धर्म। ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा —हिन्दू धर्म, मुसलमान धर्म अथवा ईसाई धर्म नहीं सुरमा—सत्य धर्म।

उन्होंने कई क्षण बाद मुँह उठा कर एक विचित्र हँसी हँसते हुए कहा था—इस स्त्री ने मुझे शिक्षा दी है। इतिहास के महापुरुष महत् व्यक्ति इस सत्य का पालन करते आये हैं, यह मैंने पढ़ा है इस युग में महात्मा गान्धी को देखा है, और उनपर मुग्ध हो गया हूँ। किन्तु सोचा था कि उसको वे ही कर सकते हैं, जो महत् एवं बृहत् हैं। किन्तु इस स्त्री ने बतला दिया—नहीं, सब कर सकते हैं, उसके समान मनुष्य भी कर सकते हैं। मुझे आज बहुत बड़ा आश्वासन मिला।

इतना कहने के साथ ही लिखने बैठ गये थे। एक ही साँस में प्रायः कई लाइनें लिखकर समाप्त कर दिया।

न्याय निष्ठुर नहीं है, यह सांसारिक सुख-दुःख की तुला का ऊपरी भाग है। जस्टिस इज डिवाइन (न्याय दैवी है)।

उस दिन मैजिस्ट्रेट, एस० पी०, सिविल सर्जन आदि से भी उन्होंने यही कहा। इस दशा में और कोई दण्ड नहीं है। मैं नहीं दे सकता। आई काण्ट।

(घ)

अविनाश बाबू ने मामला यत्नपूर्वक सजा लिया। इसमें सजाना कुछ नहीं था, केवल एक स्थान था, जिसके कारण सारे मामले के सम्बन्ध में भूल धारणा हो सकती थी। इसके लिये वे तैयार ही थे।

वे यह निश्चित जानते थे कि विचारपति के आसन पर बैठे हुए जिस मनुष्य की दृष्टि सामने खुले हुए दरवाजे के मार्ग से बाहर के उन्मुक्त प्रांगण में फैल रही है लक्ष्यहीन के समान, जिसे देखकर लगता है कि इस अदालत के कमरे के किसी के साथ उसका तनिक भी सम्पर्क नहीं है, दृष्टि के साथ ही किसी वैरागी-उदासी की तरह उसका मन भी दूर चूसा गया है; घटना के वर्णन में कोई असंगति होने पर अथवा घटना के ठीक महत्वपूर्ण स्थान पर यह मनुष्य सावधान होकर बोलेगा—एस ! अथवा चकित होकर घूम कर देखेगा, भौवें प्रश्न की व्यंजना कुछ टेढ़ी हो जाओगी, और प्रश्न करेगा—क्या ?

क्या कहेंगे मिस्टर मित्रा ? डिड यू से— (क्या आपने कहा) ?

अविनाश बाबू का अनुमान मिथ्या नहीं निकला; आज भी जज साहब चकित होकर घूमे और अविनाश बाबू की ओर देखकर प्रश्न किया, क्या ? क्या कहते हैं मिस्टर मित्रा ? आप कहते हैं कि छोटा भाई खगेन्द्र घोष, जिसका खून हुआ है, इस अभियुक्त बड़े भाई नगेन को बुला ले गया था ?

अविनाश बाबू मन ही मन खुश हुए, उन्होंने यही प्रश्न सुनना चाहा था, उन्होंने अपनी सम्मति जनाते हुए गर्दन हिलाकर कहा—यस, योर-आनर (हाँ माननीय महाशय,)। यही वास्तविक घटना है। मैं यही कह रहा हूँ।

ज्ञानेन्द्र बाबू बोले—दैट्स आल राइट। गो आन प्लीज (कृपया आगे कहिये।)

अविनाश बाबू बोलते गये— हाँ माननीय, घटना का जो परिणाम है, उसमें साधारण नियम से अभियुक्त नगेन आकर उसको बुला ले गया

होता, तो यह घटना सीधी होती। और पहले की बात के अनुसार नगेन को ही जाने की बात भी थी, किन्तु वह गया नहीं।

अविनाश बाबू ने धीर कण्ठ से एक-एक कर अपना वक्तव्य कहना शुरू किया। न तो कोई उद्वेग। न कोई उत्ताप है, केवल युक्तिसंगत विश्लेषण।—नगेन नहीं गया। उसीको जाकर बुलाने की बात थी, किन्तु वह नहीं गया, उसने नहीं बुला। मान्यवर यही है अभियुक्त की सुचिन्तित परिकल्पना का अत्यन्त सूक्ष्म एवं चातुर्यमय भाग। दूसरी ओर यही अत्यन्त चतुराई उसका उद्देश्य प्रकट कर देती है, अत्यन्त सहज ही में प्रकट कर देती है। साक्षियों—प्रमाणों द्वारा अत्यन्त सहज ही यह तथ्य प्रकट हो जायगा। अवश्य, इसकी एक और भी व्याख्या हो सकती है। किन्तु उससे भी हम एक ही सत्य पर पहुँचते हैं। मान्यवर, सारा विषय यथार्थ पट भूमि पर रखकर विचार करना होगा। वह पट भूमि क्या है? पट भूमि है—बंगाल के पल्ली-गाँव के एक कम आयवाले किसान का परिवार। सुबल घोष एक किसान था। हमारे देश के पचास वर्ष पहले के किसानों में से एक। उस समय के धर्म-विश्वास और सामाजिक विश्वास में दृढ़ विश्वासी। उसके थे एक पुत्र, एक पुत्री। पुत्र था बाल्याकाल से ही विचित्र प्रकृति का। साक्षियों-प्रमाणों से प्रमाणित होगा कि पहले यह बालक अत्यन्त उपद्रवी था। बाप ने अपने एक मात्र पुत्र को बड़ी आशा के साथ स्कूल में पढ़ने भेजा। अपनी सामर्थ्य के बाहर होने पर भी पुत्र को मनुष्य के समान मनुष्य, भद्र शिक्षित मनुष्य बनाने की लालसा उसने नहीं छोड़ी। उसने गाँव से कई मील दूर वद्धिष्णु ग्राम के स्कूल में भर्त्ती कर बोर्डिंग में रख दिया। उस स्कूल के रेकर्ड में हम पाते हैं

कि वह बालक अन्य कई उपद्रवी बालकों के साथ मिलकर स्कूल में प्रायः नित्य दण्ड का पात्र बनता और दो वर्ष बाद स्कूल से निकाल दिया गया। उसका कारण जानते हैं? उसका कारण था चोरी का अपराध और हत्या। मनुष्य की नहीं, जन्तु की। बोर्डिंग के पास ही एक बकरी-भेड़ के व्यवसायी की पशुशाला थी। उससे नियमित रूपसे दो-चार दिन बाद—बकरी-भेड़ें गायब हो जातीं। कोई चिह्न न मिलता। रक्त का दाग नहीं, किसी प्रकार की चिल्लाहट भी सुनाई न देती, किसी हिंस्र जानवर का भी कुछ प्रमाण न मिलता। अन्तमें अनेक सावधान चेष्टाओं के बाद पकड़ा गया उसी दल का एक छोटा बालक।

उसने स्वीकार किया कि यह काम उनका है। वे इन बकरी-भेड़ों को चुरा कर अधिक रात बीते पका कर दावत करते हैं। विचित्र रूप से चुराने में निपुण और सूक्ष्म था एक बालक। यही अभियुक्त नगेन घोष। उन्होंने कई गुप्त प्रवेश मार्ग बना रखे थे। उन्होंने एक खिड़की इस प्रकार खोल रखी थी कि कोई देखकर नहीं समझ पाता कि यह खींचते ही खुल जायगी। नगेन उसी मार्ग से रात को प्रवेश करता और घर में घुसते ही जिसे सामने पाता, उसीका गला दबा देता और साथ ही साथ मोड़कर घुमा देता। इसमें वह सिद्धहस्त-सा हो गया। कोई दूसरा ऐसा नहीं कर पाता। इसी कारण हेडमास्टर ने उसे स्कूल से निकाल दिया। इसके लिये बाप बहुत मर्माहत हुआ और लड़के का बड़ा तिरस्कार किया। वे वैष्णव हैं, यह अपराध उनके लिये महापाप है। इस अपराध ने बाप को इतनी पीड़ा दी, कि वह इसके लिये बालक से प्रायश्चित कराये बिना न रहा। सिर मुड़ाकर शास्त्र-विधि से प्रायश्चित कराया गया। पुत्र ने उसी

रात घर छोड़ दिया और बारह वर्ष लापता रहने के बाद लौटकर आया। उस समय उसकी आयु थी अट्ठाईस-उन्तीस वर्ष। माननीय, संन्यासी के वेशमें लौट आया। उस समय तक इस छोटे शान्त किसान-परिवार में बहुत तोड़-फोड़ हो चुका था और अनेक नयी गठनें भी तैयार हुई थीं। नगेन की माँ की मृत्यु हो गयी थी, उसकी बहिन विधवा हो गयी थी, और बाप सुबल घोष ने वंश-लुप्त हो जाने के भय से फिर विवाह कर लिया था और एक शिशु पुत्र छोड़ कर वह पत्नी भी परलोक गमन कर चुकी थी। सुबल घोष भी उस समय कठिन रोग से बिछौने पर पड़ गये थे। शिशु-पुत्र का पालन-पोषण किया था सुबल की विधवा कन्या, अभियुक्त नगेन की सहोदरा ने।

सुबल खोये हुए पुत्र को पाकर आनन्द से अधीर हो गया और उसके शरीर पर संन्यासी का वस्त्र देख कर रोते-रोते व्याकुल हो उठा। उसने कहा—तू यह वेश छोड़ दे।

नगेन बोला—नहीं।

बाप ने कहा—अरे तू होगा संन्यासी, शायद तू पायेगा परमार्थ, मोक्ष। किन्तु यह हमारे पूर्वजों का घोष वंश नष्ट हो जायगा?

नगेन बोला—नहीं, खगेन जो है।

सुबल ने कहा—छः वर्ष का बालक, वह बड़ा होगा, युवा होगा, इसी बीच घर गिरेगा, द्वार नष्ट होगा, और जमीन-जेरात काट-काट कर दस आदमी हड़प लेंगे, और उसे राह का भिखारी कर देंगे। इस विधवा युवती घोष वंश की कन्या, तेरे माँ के पेट की बहिन की अवस्था क्या होगी? बुरे का ही विचार करो।

नगेन बोला -- अच्छा, खगेन को बड़ा कर उसके विवाह होने तक, घर-परिवार बना देने तक, मैं रहूँगा। किन्तु अब मुझसे कुछ न कहो।

सरकारी वकील अविनाशबाबू ने अपने हाथ के कागजों को टेबिल पर रखकर अदालत की दीवार की घड़ी की ओर देखा। घड़ी की सुई पाँच की ओर चल रही थी। उन्होंने टेबिल पर रखे हुए कागज से ढँके शीशे का ग्लास उठाया और थोड़ा जल पीकर फिर आरम्भ किया—माननीय महाशय, मनुष्य में ही जीवन-शक्ति का श्रेष्ठ प्रकाश हुआ है। जड़ों में जो शक्ति अन्ध दुर्वार है, जन्तुओं में जो शक्ति प्रवृत्ति के आवेग से ही परिचालित होती है, मनुष्यों में वही शक्ति मन, बुद्धि और हृदय पर अधिकार करती है। जन्तुओं की प्रकृति में परिवर्तन नहीं होता, सर्कस के जानवरों को अनेक शासन करके अनेक मादक खिलाने पर भी उनके सामने चाबुक और बन्दूक तैयार रखनी पड़ती है। केवल मनुष्य में ही परिवर्तन होता है, उसकी प्रकृति बदलती है। घात-प्रतिघातों से, शिक्षा-दीक्षा से अनेक कार्य-कारणों से उसकी प्रकृति में केवल परिवर्तन ही नहीं होता, उसी परिवर्तन के बीच वह महत्ता के प्रकाश में अपने को प्रकाशित करना चाहता है। यही अधिकांश क्षेत्रों में नियम है। अवश्य ही इसकी विपरीत दिशा में भी गति देखी जाती है किन्तु वह देखी जाती है, अत्यन्त अल्प क्षेत्र में। ज्ञान बाबू के गम्भीर मुख पर एक हँसी की रेखा फूट निकली। अविनाश बाबू चतुर व्यक्ति, असाधारण कुशल हैं। इस समय जो बातें उन्होंने कही हैं, वे उनकी अर्थात् ज्ञान बाबू की ही हैं। कुछ दिन पहले यहाँ की लाइ-ब्रेरी में वक्तृता के प्रसंग में यही बातें उन्होंने कही थीं।

अविनाश बाबू बोले—उस समय के आचार-आचरण काज-कर्म के

सम्बन्ध में जो प्रमाण हम पाते हैं, उससे मैं स्वीकार करता हूँ कि अभियुक्त नगेन की प्रकृति में एक परिवर्तन हुआ था और वह परिवर्तन सत् और शुद्ध परिवर्तन था। उसके बारह वर्ष के अज्ञातवास का इतिहास हम नहीं जानते, किन्तु परवर्ती समय के नगेन को देखकर कहना होगा, इस अज्ञातकाल में साधु-संन्यासियों के सत्संग और तीर्थादि में भ्रमण के फल स्वरूप निस्सन्देह उस पर एक पवित्र विचार प्रसारित हुआ था। अन्यथा वही वर्वर पाषण्डता उसमें सक्रिय रहने पर वह अनायास ही अपने बाप की मृत्यु के बाद छः वर्ष के बालक खगेन को दूर कर निष्कण्टक हो सकता था। इसके बदले उसने इस सौतेले भाई को प्रेम के साथ छाती से लिपटा लिया। केवल यही नहीं, बाप की मृत्यु के कुछ दिनों बाद ही विधवा बहिन भी मर गयी। इसके बाद इस नगेन ने माँ और बाप दोनों का ही स्नेह देकर उसका पालन-पोषण किया। वह बालक देखने में अत्यन्त सुन्दर था। नगेन खगेन को खगेन कहकर न पुकारता, वह पुकारता गोपाल कह कर। सिर पर मौर की तरह घुँघराले केश, चमकीला रङ्ग, बड़े-बड़े नेत्र। बालक वास्तव में देखने में गोपाल सा ही लगता था।

थोड़ा रुककर हँसते हुए अविनाशबाबू बोले—माननीय महाशय, क्षमा करें, मैंने अभी एक काव्य-रचना सी कर डाली है। किन्तु मैं सीमा के बाहर नहीं गया हूँ।

ज्ञान बाबू बोले—थोड़ा संक्षेप कीजिये।

अविनाश बाबूने कहा—माननीय महाशय, यह मामला अत्यन्त विचित्र। है मुझे लगता है कि वर्तमान अवस्था में इसी प्रकार सविस्तार वर्णन और उसके विश्लेषण के बिना हम ठीक-ठीक सिद्धान्त पर नहीं पहुँच सकते।

अभियुक्त ने स्वयं स्वीकार किया है कि नाव उलटने से दोनों नदी में डूब गये थे। छोटा भाई अच्छी तरह तैरना नहीं जानता था, वह बड़े भाई को पकड़ कर लिपट गया। बड़े भाई अभियुक्त नगेन ने इस दशा में उसके हाथ से अपने को छुड़ाने के लिये आत्म-रक्षा की पाशविक प्रकृति की प्रेरणा से उसकी कण्ठ-नाली दबा कर पकड़ ली; और कुछ क्षणों में ही छोटे भाई के बन्धन से मुक्त होकर बहता हुआ किसी प्रकार नदी के मोड़ पर किनारे आया। दूसरे दिन सबेरे छोटे भाई की लाश मिली, उसी तट के कुछ और नीचे। मृत खगेन के शवच्छेद की जो रिपोर्ट हमें मिली है, उसमें भी देखते हैं कि खगेन के गले की कण्ठ-नाली के दोनों ओर कई क्षत चिह्न थे। डाक्टर का कथन है कि नखों द्वारा ही ये चिह्न हुए हैं और शव की पाकस्थली में जल पाया गया है बहुत थोड़ा, जल में डूबने से मृत्यु होने पर और अधिक परिमाण में जल पाया जाता। डाक्टर इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि मृत्यु हुई है साँस रुकने के कारण और कण्ठ-नाली को अत्यन्त बलपूर्वक दबा रखने के कारण ही मृतक की साँसें बन्द हुई हैं। अब ऐसी दशा में हमें विचारना है कि अभियुक्त नगेन ने कैसी मानसिक अवस्था में खगेन का गला दबाया था। उसी मानसिक अवस्था का अभ्रान्त स्वरूप निर्णय करने पर ही अभ्रान्त न्याय निर्भर करता है। साधारण भ्रान्ति से न्याय की पवित्रता, महिमा कलंकित हो सकती है, नष्ट हो सकती है। हम एक निर्दोष अति साधारण मनुष्य की मृत्यु-यंत्रणा से अधीर हो मानसिक ज्ञान खोकर आत्मरक्षा की पाशविक प्रवृत्ति के अधीन होने के कारण उसको भूल से चरम दण्ड से दण्डित करने का भ्रम कर सकते हैं। फिर इसके विपरीत भूल से अत्यन्त कुटिल षड्यन्त्र को भेद न कर सकने के

कारण कठोरतम पापी को मुक्ति देकर मानव-समाज का सबसे बड़ा अकल्याण कर सकते हैं। माननीय, संसार में सिंह का चमड़े ओढ़े हुए गधे अधिक हैं, किन्तु मनुष्य के चमड़े में आवृत्त नरघाती पशुओं या विषधरों की संख्या उनसे भी अधिक है। सिंह का चमड़ा ओढ़े हुए गधों के सिंह के चमड़े का आवरण खींच कर खोल देने से ही समाज निरापद हो जाता है, समाज में कौतुक की सृष्टि होती है।

मनुष्य के चमड़े में आवृत्त पशु-सर्प के मनुष्य के चमड़े का आवरण हटा देने से मनुष्य-समाज भय करता है, समाज को उसके हाथ से मुक्त करने का गुरुदायित्व आ पड़ता है समाज के ऊपर। इसी कारण मुझे अतीत काल से आज तक के इस अभियुक्त के जीवन और कार्यों का विशद वर्णन करना पड़ रहा है। धर्म-स्थान में विचारपति मनुष्य होते हुए भी मनुष्य से ऊपर स्थान ग्रहण करते हैं। स्थूल प्रमाण-प्रयोग-सम्मत न्याय करने से भी महानतर उनका दायित्व है; स्थूल प्रमाण-प्रयोगों के आवरण को फाड़ कर वास्तविक सत्य का आविष्कार करते हुए ऐसा न्याय करना, जिसे हम दैवी न्याय कह सकें।

अदालत के बाहर के अहाते की उस ओर की घड़ी में घण्टा बजने लगा टन्-टन्। अदालत के कमरे की घड़ी में अब भी पाँच बजने में दो मिनट देर है।

अपनी घड़ी की ओर देखकर ज्ञान बाबू बोले—कल के लिये मामला मुल्तवी किया गया।

उन्होंने एक बार अभियुक्त की ओर देखा। सबल स्वस्थ शरीर नगेन घोष, स्थिर अपलक दृष्टि से देख रहा है उनकी ओर। विचित्र स्थिर दृष्टि

है ! इस मनुष्य का मुँह जैसे पत्थर से गढ़ा हुआ है। इसमें कोई अभि-व्यक्ति नहीं है।

यह थाने से एस० डी० ओ० की अदालत और यहाँ तक स्वीकार कर एक ही बात कहता है। नाव से नदी पार होते समय हवा कुछ तेज थी, बीच नदी पार होते ही वह और तेज हो उठी। खगेन तैरना प्रायः नहीं जानता था, वह भय से चिल्ला उठा, नगेन ने हाथ बढ़ाकर उसका हाथ पकड़ कर कहा कि भय क्या है ? खगेन उसी समय नाव के उस सिरे से आकर इससे लिपट गया, साथ ही साथ छोटी नाव उलट गयी। जल में खगेन उसे पकड़ कर जोर से लिपट गया। दोनों डूबने लगे। पहले इसने उसका हाथ छुड़ाने की चेष्टा की, किन्तु जितनी ही चेष्टा करता, उतना ही वह नगेन से और चिपटता जाता। उसकी छाती फटी जा रही थी, वह पानी पी रहा था, अकस्मात् खगेन के गले पर उसका हाथ पड़ा। उसने उसका गला दबा रखा। खगेन ने उसे छोड़ दिया। वह नहीं जानता, खगेन उसी से मरा है या नहीं। किनारे आकर बाहर निकला और कुछ देर तक वहाँ सोता रहा। इसके बाद किसी प्रकार उठ कर घर आया। आधी रात के समय जब उसका शरीर स्वस्थ हुआ, तो जान पड़ा कि खगेन शायद मर गया है। शायद गला दबाने से ही मरा। वह सवेरे उठकर थाने गया। इजहार किया। इसकी सजा क्या है, वह नहीं जानता। भगवान जानते हैं। जो सजा जज साहब देंगे, वह मंजूर कर लेगा।

भगवान जानते हैं। हाय अभागे ! अपने क्या किया है, वह स्वयं नहीं जानता। भगवान को साक्षी मानता है। किन्तु भगवान तो साक्षी नहीं देते। इसलिये विचारपति को दैवी न्याय करना होगा ।

दो

(क)

दैवी न्याय !

अविनाशबाबू ने जैसे अभिप्रायपूर्वक ही कहा है।

इसका व्यवहार जान पड़ता है कि दूसरों की अपेक्षा वे ही अधिक करते हैं। जहाँ स्थूल प्रमाण-प्रयोग एक मात्र अवलम्बन हैं, मनुष्य जब तक स्वार्थान्ध होकर मिथ्या बोलने में नहीं हिचकता, उस समय तक दैवी न्याय असम्भव जान पड़ता है। सहज, सरल, सभ्यता-रहित मनुष्य जो मिथ्या बोलता है वह पहचानी जाती है, किन्तु सभ्य-शिक्षित मनुष्य जब मिथ्या बोलता है, उस समय वह मिथ्या सत्य से भी अधिक प्रखर हो उठती है। पारे का प्रलेप लगाया हुआ शीशा जब दर्पण बन जाता है, तो उसमें प्रतिबिम्बित सूर्य की छटा नेत्रों की दृष्टि को सूर्य के समान ही चकाचौंध कर देती है। जज, जूरी सबको असहाय होकर धोखा खाना पड़ता है।

जस्टिस चटर्जी कहते थे—He is God, God alone, He can do it. (इसको केवल ईश्वरही कर सकता है) हम नहीं कर सकते। अमोघ न्याय-विधान के कर्तव्य-बोध और न्याय-महिमा को स्मरण रखकर प्रमाण-प्रयोगों का सूक्ष्म रूप से विश्लेषण कर, विन्दुमात्र भावावेश को प्रश्रय न दे, हम केवल विधान के अनुसार न्याय कर सकते हैं।

एक नारी अपराधिनी को प्राणदण्ड देते समय उन्होंने कहा था। सुरमा, उन्हींकी लड़की सुरमा रो पड़ी थी—एक स्त्री को फाँसी के तख्ते पर झुला दोगे, बापू ?

चटर्जी साहब ने कहा था—अपराध के क्षेत्र में नारी और पुरुष के किये हुए काम का गुरुत्व एक तिल भी कम-बेशी नहीं होता। दण्ड के क्षेत्र में भी नारी और पुरुष का कुछ भेद नहीं । ईश्वर को स्मरण कर इस अवस्था में मुझे इस दण्ड को छोड़ और कोई उपाय नहीं है।

उन्हीं से सीखी थी ज्ञानेन्द्रनाथ ने न्याय की धारा-पद्धति। वे ही हैं उनके गुरु। ज्ञानेन्द्रबाबू ईश्वर को नहीं मानते। वे ईश्वर का स्मरण नहीं करते। ईश्वर, भगवान के नाम बड़े अच्छे हैं, किन्तु ये नाम ही हैं। वे न तो साक्षी देते हैं, न न्याय ही करते हैं। किन्तु इन नामों में एक अद्भुत पवित्रता है। न्याय के क्षेत्र में एक आदर्श है, उसीको वे स्मरण करते हैं। वही दैवी न्याय है। लौटते समय गाड़ी में बैठकर मन ही मन उन्होंने मृदु कण्ठ से बार-बार उच्चारण किया था डिभाइन जस्टिस—दैवी न्याय !

स्थूल प्रमाण-प्रयोग के आवरण को फाड़ कर वास्तविक सत्य को आविष्कार करते हुए ऐसा ही न्याय करना होगा जो अभ्रान्त हो, जिसको कह सकें दैवी न्याय !

अविनाश बाबू की बातें कानों के पास बज रही हैं।

दैवी न्याय ! दैवी न्याय !

उनकी स्त्री सुरमा देवी कोठी के अहाते के बाग में बेंत के चेयर-टेबिल सजा कर बैठी हुई पुस्तक पढ़ रही थीं। दिन भर की बदली के बाद एक घण्टा पहले बादल कटकर आकाश निर्मल हो गया है, धूप निकल

आयी है। इस धूप की शोभा की तुलना नहीं है। झलमल कर रही है अच्छी तरह स्नान की हुई श्यामल पृथ्वी। सामने पश्चिम का दिगन्त खुला हुआ है। यह कोठी शहर के पश्चिम भाग में एक टीले पर है। इसके उस पार पश्चिम ओर बस्ती नहीं है। दो मील तक कोई गाँव या जंगल कुछ नहीं है। लाल कंकड़ीली भूमि पर तीन चार पीपल के पेड़ और एक ताड़ का पेड़ पागलों की तरह यहाँ-वहाँ खड़े हैं, और इस झाड़ी को बीचो-बीच चीर कर चली गयी है एक पहाड़ी नदी। बरसात में यह नदी एक दम जल से भरी हुई बही जा रही है। उसी के उस ओर अबाध प्रान्तर के दिगन्त के सिर के सिन्दूर के समान अस्तगामी सूर्य खूब लाल दिखलाई पड़ रहा है। धूप में लाल आभा क्रमशः गाढ़ी से अधिक गाढ़ी होती जा रही है। गाड़ी आकर खड़ी हो गयी। अर्दली उतरा और दरवाजा खोलकर सम्मान के साथ हटकर खड़ा हो गया। ज्ञानेन्द्र बाबू इसी बीच गम्भीर चिन्ता में डूब गये थे। वे स्तब्ध होकर गाड़ी में बैठे थे। अर्दली ने मीठे स्वर में पुकारा—हुजूर।

ज्ञानेन्द्र बाबू चौंक पड़े। ओह! कहकर गाड़ी से उतरे।

सुरमा देवी स्वामी को देखकर उठ खड़ी हुईं। पुस्तक चायकी टेबिल पर रखकर आगे बढ़ीं। स्वामी के मुख की ओर देखकर गम्भीर स्वर में बोलीं—और कितने दिन चलेगा सेशन?

थोड़ा हँस कर ज्ञानेन्द्र नाथ बोले—अधिक दिन नहीं। मामला तो जटिल है, किन्तु साक्षियों की संख्या कम है। अधिक दिन नहीं लगेंगे।

बाग में चाय के टेबिल की ओर देख कर ज्ञानेन्द्रबाबू ने कहा—तुमने बाग में चाय का टेबिल रखा है?

सुरमा बोली—वृष्टि नहीं होगी। देखो न कैसी रक्त सन्ध्या है!

—हाँ! अद्भुत शोभा है। अब तक वे आकाश की ओर देख रहे थे। सुरमा ने उनकी दृष्टि फेरने के लिये बात कही थी, अब उस ओर घूमी। रक्त सन्ध्या! रक्त सन्ध्या के साथ उनके जीवन की एक स्मृति जड़ित है। सुरमा के साथ जिस दिन प्रथम साक्षात् हुआ था—उस दिनभी रक्त सन्ध्या थी आकाश में।

सुरमा ने कहा—जरा झटपट आओ।

Yes, time and tide wait for none;—हँस पड़े ज्ञानेन्द्र बाबू।

—केवल इसीलिये नहीं। कविता सुनाऊँगी।

—अभी आता हूँ।

ज्ञानेन्द्र बाबू हँसे। गम्भीर क्लान्त मुख थोड़ा उज्वल हो गया। वे प्रसन्न हो गये। बहुत दिनों बाद सुरमा ने कविता लिखकर उन्हें सुनाना चाहा है। सुरमा कविता करती है, अपने छात्री-जीवन से ही कविता करती है। उस समय हास्य रस की कविता करती थी। उसमें उसको ख्याति मिली थी। सुरमा के साथ प्रथम परिचय के बाद उन्होंने भी कविता करनी शुरू की थी। वे कविता में ही सुरमा की कविता का उत्तर देते थे, और अनुभव किया था कि वे भी कविता लिख सकते हैं। और लिख भी सकते थे। जजी के आफिस में उनका कवित्व पत्थर से दबी हुई घास के समान मर गया है। किन्तु सुरमा के जीवन में बारहोमास फूले हुए वृक्ष की तरह काव्य रुचि और कविकर्म निरन्तर फूलता ही रहता है,

फूलता ही रहता है। सम्भवतः अजस्र फूल सुरमा खिलाती है किन्तु वे खिलते हैं उनकी दृष्टि की ओट में, उनके निश्वास के घेरे के बाहर। कब से ऐसा हो रहा है, यह हिसाब उनको स्मरण नहीं है, किन्तु हो रहा है। अकस्मात् एक दिन अनुभव किया था कि सुरमा उनको अब कविता नहीं सुनाती। किन्तु वह लिखती है।

उन्होंने सुरमा से पूछा था; सुरमा ने उत्तर दिया था—हास्यरस की कविता लिखती थी, और हँसी ठट्ठा में सुनाती थी। अब वह सब नहीं लिखती। ज्ञानेन्द्र नाथ ने कहा था—जो लिखती हो, वही सुनाओ।

सुरमा बोली थी—जो दिन सुनाने लायक होगा, उसी दिन सुनाऊँगी। ज्ञानेन्द्र नाथ ने थोड़ा जोर दिया था; किन्तु सुरमा ने कहा था—कृपया इसके लिये जोर न दो।

ज्ञानेन्द्र नाथ कुछ बाद ही उस बात को भूल गये थे। बारहोमास फूलने वाले उस पेड़ के समान सुरमा का जीवन है, जिसमें केवल फूल ही खिलते हैं, फल नहीं लगते। सुरमा निस्सन्तान है।

आज सुरमा ने कविता सुनाने की इच्छा की है। चिन्ता के भार से दबा मन थोड़ा हल्का हो गया। जैसे भारी बोझा ढोने वाले के पसीने से लथपथ शरीर में ठंडे वायु का थोड़ा स्पर्श लग गया हो।

ज्ञानेन्द्र बाबू ने एक बार भली भाँति सुरमा की ओर देखा। परिणत यौवना इस सुरमा में प्रथम दिन की उसी तरुणी सुरमा को जैसे देख रहे हैं। घोषाल साहब बँगले में चले गये—कुछ तेजी के साथ। सुरमा देवी पश्चिम दिगन्त की ओर देखते-देखते खड़ी ही रहीं।

आज बहुत समय से सुरमा के मन में भी वहीं स्मृति गुँजन कर रही

है। साढ़े चार बजे से बाहरी बरामदे में आकर दूर की उस भरी हुई नदी की ओर देख रही थीं। धीरे-धीरे निःशब्द आयोजन के बीच आकाश में रक्त सन्ध्या जाग उठी। उनकी दृष्टि उस ओर उस समय आकृष्ट नहीं हुई। अकस्मात् रेडियो में एक गाना बजने लगा। उस गाने की प्रथम कड़ी कान में जाते ही आकाश की सन्ध्या जैसे मनके द्वार पर पुकार कर सामने आ खड़ी हुई।

तुम सन्ध्या के मेघ शान्त सुदूर मेरी साध की साधना।

केवल रक्त सन्ध्या का रंग ही नहीं, उसके साथ ज्ञानेन्द्र नाथ के साथ प्रथम साक्षात् की स्मृति भी रंगीन होकर दिखाई पड़ी।

यह कितनी पुरानी बात है। उस समय वे बर्दवान में जज साहब की कोठी में थे। उसके पिता बर्दवान में सेशन जज थे। उन्नीस सौ एकतीस साल। अगस्त मास। इसी तरह दिन भर वर्षा हो रही थी, सन्ध्या समय वर्षा से शान्त बादलों में इसी प्रकार रक्तसन्ध्या प्रकट हुई थी।

माँ-बाप घर पर नहीं थे। वे गये थे अंग्रेज पुलिस साहब की कोठी पर चाय के निमन्त्रण में। वह उस समय कलकत्ता में रहकर पढ़ती थी। उसी दिन वह यहाँ आयी थी। इसी कारण उसको निमन्त्रण नहीं था, पुलिस साहब नहीं जानते थे कि वह आयेगी। अकेली बँगले में बैठी थी, अकस्मात पश्चिम की खिड़की से रक्तसन्ध्या की रंगीनी की एक झलक घर में पड़ रही थी एक रंगीन चादर के समान। और सारे घर को ही जैसे रंगीन बना दिया था। बँगले में अकेली जैसे उसके प्राण में एक प्रकार का नशा हो गया था। वह मुक्तकण्ठ से यह गान गा रही थी।

तुम सन्ध्या मेघ शान्त सुदूर मेरी साध की साधना।

*	*	*	*

'मम हृदय रक्त रंग में तव चरण दिया है रंग
हे सन्ध्या स्वप्न विहारी।

वह मन में उल्लास भर गाते-गाते खिड़की के पास जाकर खड़ी होते ही अप्रतिभ हो गयी। सामने ही बंगले के अहाते में सीढ़ी के नीचे बाइ-सिकिल पकड़ कर खड़े थे ज्ञानेन्द्र नाथ। सुन्दर, सुपुरुष, लम्बा शरीर, गौर वर्ण, स्वास्थ्यवान ज्ञानेन्द्रनाथ भी थे उस समय पूर्ण युवक। वेष-भूषा में जिसको स्मार्ट कहते हैं, उससे भी कुछ अधिक। गले की टाई थी गाढ़े लाल रंग की, यह भी सुरमा को स्मरण है। अप्रतिभ होकर गाना बन्द कर वह खिड़की के पास से हट गयी थी, और अर्दली को पुकार कर पूछा था—

वह कौन है? क्या चाहता है?

अर्दली ने कहा था—यहाँ के थर्ड मुँसिफ साहब हैं। नये आये हैं। साहब को सलाम देने के लिये आये हैं।

—कब से आये हैं? साहब नहीं हैं, बतलाया क्यों नहीं?

— दो मिनट से ज्यादा नहीं हुआ। बोल दिया साहब नहीं हैं, चले जा रहे थे, लेकिन बाइसिकिल पञ्चर हो गयी। इसीलिये देर हो गयी।

बाइसिकिल पञ्चर हुई है? सुरमा को हँसी आ गयी। बेचारे मुन्सिफ साहब, ऐसा सुन्दर सूट पहन कर बाइसिकल ठेलते-ठेलते चलेंगे। बर्दवान की सड़कों की लाल धूल जल में गलकर कीचड़ बन गयी है। बीच-बीच के गड्ढों में लाल मिक्चर भर गया है। सुरखी का मिक्चर! अत्यन्त कौतुक में भर कर उसने फिर खिड़की से एक बार झाँक कर देखा।

आज रेडियो में वही गाना सुनकर रक्तसन्ध्या की अपूर्व छवि सुरमा देवी के मनमें फूट उठी थी।

(ख)

ज्ञानेन्द्रनाथ ने बँगले में प्रवेश करते ही सामने की दीवार की ओर देखा। वहाँ टँगा हुआ था तरुणी सुरमा का ब्रोमाइड इनलार्ज किया हुआ चित्र।

लावण्य परिपूर्ण मुख, मदिरदृष्टि पूर्ण दो बड़े नेत्र, गले के मोती के रंग ने सुरमा को अपूर्व बना दिया था। उस युग में इतने प्रकार की रंगीन साड़ियों का रिवाज नहीं था। वे मिलती ही नहीं थीं। सुरमा उज्ज्वल जमीन पर थोड़ा काम की हुई एक ढकाई साड़ी पहने हुए थी, और किसी रंग की साड़ी में जान पड़ता है, सुरमा अधिक सुन्दर नहीं लगती। उस दिन जज साहब की कोठी पर देखा था केवल सुरमा का मुख। सीढ़ी के नीचे से वह अधिक देख नहीं सके थे। देखना भी नहीं चाहते थे। रक्त सन्ध्या से झलमल उस मुख से दृष्टि दूसरी ओर गयी ही नहीं। देखने का अवकाश भी नहीं था। सुरमा जज साहब की कन्या, कालेज में पढ़ती है, प्रगतिशील समाज की है। ज्ञानेन्द्रनाथ उस समय केवल थर्ड मुन्सिफ। ग्रामीण हिन्दू मध्यवित्त घर की सन्तान। उनके समाज के लोग मुन्सिफी मिलने के कारण उसे 'रत्न' कहते, भाग्यवान मानते। किन्तु सुरमा के समाजवालों के लिये एकदम झूठा पत्थर और मुन्सिफ को भी नितान्त सौभाग्य की सान्त्वना मानते थे। सुरमा को ठीक उसी वेश में खूब निकट

से देखा था, अपने ही घर, कुछ दिन बाद। जान पड़ता है डेढ़-दो मास पीछे। उनका मकान था शहर के वकीलों-मुख्तारों के मुहल्ले के निकट। उन्होंने एक सुन्दर फूस का बँगला लिया था। उस समय बिजली नहीं चली थी। रहने के लिये गर्म देश में फूस के बँगले से आरामप्रद और कोई घर नहीं होता। सामने एक टुकड़ा बाग भी था। उस दिन अदालत समाप्त कर बाइसिकिल पर सवार होकर घर के सामने एक मोड़ से मुड़ने के बाद बाइसिकिल पर बैठे-बैठे ही विस्मित हो गये थे। उनके घर के दरवाजे पर मोटर खड़ी थी! किसकी मोटर है? दूसरे ही क्षण मोटर पहचान कर उनके विस्मय की सीमा न रही। यह तो सेशन जज की 'कार' है। वही तो पास खड़ा होकर जज साहब का अर्दली ड्राइवर से बातें कर रहा है। बाइसिकिल पर से विस्मित और व्यस्त होकर उतर पड़े और अर्दली से पूछा—कौन आया है?

अर्दली ने मुन्सिफ साहब को ससम्मान सलाम कर कहा—मिस साहब आयी हैं हुजूर।

मिस साहब! जज साहब की वही कन्या? उस दिन बँगले पर न केवल उसका गाना ही सुना था ज्ञानेन्द्रनाथ ने, वरन् उसके तीक्ष्ण कण्ठ का आह्वान भी सुना था—अर्दली!

केवल इतना ही नहीं। कालेज शिक्षिता, अति आधुनिकता, पिता की इस लाड़ली कन्या के सम्बन्ध में इसी बीच और भी बातें सुनी थीं। व्यंग कवितायें करती हैं। वाक्य-वाण चलाने में पारंगत है। यहाँ के 'नीलाम-इश्तिहार सर्वस्व' साप्ताहिक में जज साहब की कन्या की व्यंग कवितायें प्रकाशित भी हुई हैं। उन्होंने भी पढ़ी है। इसी बीच उन्होंने

एक बार और इस युवती को देखा था। एक दिन सबजज साहब के घर उनके छोटे पुत्र के विवाह के उपलक्ष के प्रीति-सम्मेलन में इस युवती को जज साहब के निकट बैठे हुए भी देखा था। यह लम्बे शरीरवाली युवती जिस प्रकार अच्छी लगी थी, उसकी संयत गम्भीरता देखकर उसी प्रकार सम्मान भी उत्पन्न हुआ था। वही युवती आयी है उनके घर? क्यों? सम्भवतः प्रगतिशीला जज-कन्या किसी समिति-टमिति के चन्दे के लिये या सुमति को उसकी सदस्या बनाने आयी होगी। सुमति क्या—?

आज सुमति का नाम स्मृतिपथ पर उदय होते ही प्रौढ़ ज्ञानेन्द्रनाथ ने सुरमा के चित्र से दृष्टि हटा कर बायीं ओर की दीवार पर देखा। दीवार के बीच में कपड़े के परदे से ढका हुआ एक चित्र लटक रहा है।

सुमति का चित्र। सुमति उनके पहले विवाह की स्त्री थी। ज्ञानेन्द्र बाबू ने एक गहरी साँस ली। अभागिनी सुमति! ज्ञानेन्द्र बाबू के मुख से दो दुःखमय सकातर ओह-ओह शब्द जैसे अपने आप निकल पड़े। वे शीघ्रता से वह घर पार कर पोशाक घर में घुस गये।

सुमति की स्मृति मर्मान्तक है।

आह! कहकर ज्ञानेन्द्र बाबू ने एक गहरी साँस ली। सुमति की मृत्यु मर्मान्तक है। वे कमीज खोल रहे थे कि उँगली का सिरा पीठ पर पड़ा। गंजी खोल दी। पीठ के ऊपर का चमड़ा है असमतल—ऊबड़-खाबड़। उन्होंने गर्दन नीची कर छाती की ओर देखा। छाती पर भी जो एक घाव का चिह्न है उसपर हाथ फेर कर देखा। आईने के सामने खड़े होकर

छाती की चोट का चिह्न के प्रतिबिम्ब की ओर देखा। बायें हाथ में पीठ के घाव का अनुभव किया। वह सारी पीठ पर है। ओह! अब भी स्पर्श से कातर हो गये। बीस वर्ष बीत गये, किन्तु दूर नहीं हुआ। कोट, कमीज और गंजी के नीचे ढँका रहता है। अनजाने किसी प्रकार का दबाव पड़ते ही चौंक उठते हैं। सिहर उठते हैं। सुमति को अन्त में पहचानने का उपाय न रहा। उन्होंने सुना था, किन्तु कल्पना कर सकते हैं। वे उस समय अज्ञान थे; लगता है एक बार जैसे देखा था! क्षण भर के लिये ज्ञान हुआ था।

ज्ञानेन्द्र बाबू पोशाक-घर से सटे हुए स्नान घर में चले गये। उन्होंने चौकी पर बैठ कर मुँह-हाथ धोया। साबुनदानी से साबुन उठा लिया।

ठीक उसी समय सारा स्नानघर एक लाल प्रकाश में लाल हो उठा। जैसे कहीं पर जलती हुई आग की छटा लपक उठी हो। ज्ञानेन्द्रनाथ चौंक उठे। हाथ से साबुन गिर पड़ा, और क्षण भर में घूम कर देखा पास की खिड़की की ओर। यह छटा उसी ओर से आयी थी। खिड़की के घिसे हुए काँच आग के लाल रंग से चमक उठे। एक भयंकर आतंक से उनके दोनों नेत्र फैल गये? वे चिल्ला पड़े। एक भयार्त आर्तनाद निकला। उसमें भाषा नहीं, केवल रव था।

\+ + + +

भक से आग जल उठी थी, किन्तु जिसे अग्निकाण्ड कहते हैं, वह नहीं हुआ था।

जँगले के ठीक उसी ओर, सम्भवतः आठ-दस फीट खुली जगह के बाद ही घर के रसोईघर में रसोइया आमलेट तल रहा था। आमलेट

तलने का बर्तन सम्भवतः मात्रातिरिक्त गर्म हो गया था। उसके ऊपर घी ढालते ही वह धाँय-धाँय करके जल उठा, एवं विभ्रान्त रसोइये के हाथ से घी का बर्तन भी गिर गया। आग भी कुछ अधिक ही हुई थी, उसी आग का प्रतिबिम्ब जाकर काँच के बँगले में प्रतिबिम्बित हुआ था।

उसी को देखकर ज्ञानेन्द्रनाथ भय से विभ्रान्त हो गये थे।

वे भय से चिल्लाते हुए नंगे शरीर, नंगे पैर दौड़ते हुए बाहर निकले। वह भी कैसी चिल्लाहट! भयार्त केवल एक ओ-ओ-ओ शब्द। सुरमा देवी भागती हुई आयीं और उन्हें पकड़ कर उत्कण्ठित स्वर में पूछा—क्या हुआ? क्या हुआ? अरे! अरे!

ज्ञानेन्द्रबाबू थर-थर काँप रहे थे। किन्तु वे थे बुद्धिमान पण्डित पुरुष। अत्यन्त भयाकुल अवस्था में भी उनकी धीमत्ता प्राणपण से, आँधी के बीच वनस्पति के शिखर के समान, लड़ाई कर अवनमित अवस्था से सिर उठा कर खड़ी हो गयी। उन्होंने पीछे घूम कर बँगले की ओर देखा। नेत्र की भयार्त दृष्टिका रंग बदला, वह प्रश्नातुर हो गया। बोले—आग। किन्तु—।

अर्थात् वे खोज रहे थे कि एक मिनट पहले जिसे आग की शिखा को भक-भक कर जलते देखा था, वह कहाँ है? क्या हुई?

सुरमा ने विस्मय पूर्वक प्रश्न किया—आग? कहाँ है?

अपने आपसे ही ज्ञानेन्द्रबाबू ने पूछा-क्या हुई अग्नि की वह लहलहाती हुई छटा जो उन्होंने देखी थी? उनके नेत्रों में धुआँ लग गया है। दूसरे क्षण बोले—ब्वाय!

ब्वाय ने आकर सारा विवरण बतलाते हुए कहा—आग कुछ क्षण जली थी, इसके बाद ही बुझ गयी।

ज्ञानबाबू बोले—ऐसी असावधानता क्यों हुई ? घर में आग लग सकती है।

ब्वाय ने सविनय कहा—टिन की छत''''।

—इस आदमी के अपने कपड़े-लत्ते में लग सकती थी। स्त्री की ओर घूम कर बोले—उसको जबाब दे दो! इतना कहते ही तेजी से बँगले के भीतर चले गये। सुरमा देवी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। स्वामी की पीठ के दो घावों के चिह्नों की ओर देखती रहीं। बहुत दिन पहले की बात उन्हें स्मरण हो आयी। ज्ञानेन्द्रनाथ और सुमति घर में आग लगने से जलती हुई छत के नीचे दब गये थे। खबर पाकर सुरमा एवं जज साहब दौड़ पड़े थे। घर में आग लगी थी रात में। मुफस्सिल शहर में फूस का बँगला, शीतकाल, दरवाजे और खिड़कियाँ जोर से बन्द थीं। फूस के बँगले की आग ने जान पड़ता है थोड़ा आराम ही दिया, जब उनकी नींद टूटी, उस समय तक चारों ओर पकड़ लिया था। दरवाजा खोल कर बाहर निकलते-निकलते सामने की छाजन खिसक कर नीचे गिर पड़ी। सुमति, ज्ञानेन्द्र बाबू जलती हुई छाजन के नीचे दब गये। ज्ञानेन्द्र बाबू उसका हाथ पकड़ कर बाहर ला रहे थे, बीच में सुमति का पैर शीशे से कट गया और वह गिर पड़ी। ज्ञानेन्द्र बाबू के छिटक कर सामने गिरने पर भी उनकी पीठ और छाती पर जलती हुई छाजन गिर पड़ी। सुमति का सारा शरीर जल कर झुलस गया था। ओह! वह कैसा मर्मान्तक दृश्य था। ज्ञानेन्द्र बाबू उस समय अस्पताल के भीतर बिछौने पर अज्ञान अवस्था में पड़े हुए थे। सुमति का शरीर कपड़े से ढँका हुआ था। उसको उठाकर डाक्टर ने दिखाया था।

ओह! ओह! ओह! सुरमा देवी भी आँखें बन्द कर सिहर उठीं।

(ग)

कैसा सुन्दर चेहरा कितना वीभत्स हो गया था। ओह! सुमति का स्मरण हो रहा है। श्याम वर्ण, पीठ पर लटकते हुए काले केश, बड़े-बड़े दो नेत्र, दोहरा कोमल बदन, मोतियों की पाँत की तरह सुन्दर दाँत, हँसते समय सुमति के गालों पर गड्ढे पड़ जाते, और दोनों में अनिर्वचनीय प्रेम था। अफसरों में इसे लेकर कितनी जल्पना—कल्पना होती थी। होनी भी उचित ही थी। ब्राह्म विलायत से लौटे वैरिस्टर जज साहब की कालेज में शिक्षा पायी हुई कन्या के साथ साधारण मुन्सिफ की स्त्री ग्रामीण जमींदार की कन्या अर्द्ध शिक्षिता सुमति के साथ ऐसी गहरी अन्तरंगता कैसी? किसी ने कहा था—कहीं किसी जिला स्कूल में सुरमा और सुमति दोनों ने साथ-साथ पढ़ा है। कोई कहता—सुरमा और सुमति के माता-पिता किसी समय दार्जिलिङ्ग जाकर पास-पास रहते थे। उसी समय से दोनों सहेलियाँ हैं। अकस्मात् यहाँ सब जज के घर पर दोनों ने दोनों को पहचान लिया और पुरानी मित्रता फिर ताजी हो गयी। किन्तु सब बातों में एक न एक असंगति निकल ही पड़ती थी। अन्त में वास्तविक बात प्रकट हुई।

सुमति थी उसकी अपनी फुफेरी बहिन। जज साहेब अरविन्द चटर्जी थे सुमति के मामा। सुमति की माँ के सहोदर भाई। कालेज में पढ़ते समय ब्राह्म होकर सुरमा की माँ से विवाह किया था। बाप ने पुत्र को त्याग दिया था। घर में पुत्र का नाम लेना भी निषिद्ध था। दोनों पक्षों में कोई सम्पर्क नहीं रहा। अरविन्द बाबू बिलायत चले गये, वैरिस्टर होकर आने पर न्याय-विभाग की नौकरी को लेकर पूर्णतः पृथक् हो गये। उनके

लिये खबर न रखना ही स्वाभाविक था। पितृपक्ष भी नहीं रखता था, रखा भी नहीं। वरन् इस पुत्र का नाम उन्होंने यत्नपूर्वक मिटा दिया, उस समय के सामाजिक कलंक और लज्जा के विचित्र कारणों से। परिचय मालूम होने पर यह आदान-प्रदान कठिन हो जाता। सुमति ने अपनी माँ से मामा का नाम सुना था। सुना था कि वे ब्राह्म होकर घर से चले गये, बस यहीं तक। उसकी माँ ने विवाह के समय बार-बार कहा था कि वह मामा की बात कभी न करे। कौन जाने, कौन क्या सोचे। सुरमा ने अपने पिता से अवश्य सुना था। इस समय जज साहब अरबिन्द चटर्जी थोड़ा भावुक हो गये थे। विशेष कर रात के समय ब्राण्डी पीने के बाद माँ के लिये रोया करते थे। कहते—मेरी माँ देवी थी और वे कितनी सुन्दरी थीं। साक्षात् मातृदेवता! जैसे साक्षात् हमारा बंगाल देश। श्यामवर्ण, पीठ पर घने काले केश, बड़े-बड़े नेत्र, मुख में मधुर मुस्कान, कोमल-कोमल गठन—आहा- हा!

सुमति का चेहरा था ठीक उन्हीं के समान, उनकी माँ के समान। उसे देखते ही परिचय प्रकट हो गया। पहचाना था चटर्जी साहब ने स्वयं ही। बर्दवान में सुमति को आये उस समय दो मास बीते थे। सबजज के घर पर छोटे पुत्र के विवाह का सामाजिक अनुष्ठान—बहुभात का प्रीति भोज था। सुरमा, उस की माँ, एवं पिता बाहर के बरामदे में बैठे थे। उस स्थान पर मैजिस्ट्रेट साहब, पुलिस साहब, डाक्टर साहब भी स्त्रियों के साथ बैठे थे। पास ही थोड़ी दूर पर बैठे हुए थे। डिप्टी, सबडिप्टी मुँसिफों का दल। उनकी गृहिणियों की महफिल भीतर लगी थी। इसी महफिल के बीच के रास्ते से सुमति

भी भीतर चली गयी। सुरमा के पिता मजिस्ट्रेट के साथ बातें कर रहे थे। अकस्मात स्तब्ध हो गये, दृष्टि में निकल पड़ा था अपरिसीम विस्मय। उन्होंने दूसरे क्षण अवश्य आत्म सम्वरण कर फिर बोलना शुरू कर दिया। किन्तु उस क्षण भर की विस्मय विमूढ़ता को बहुतों ने लक्ष्य किया था, सुरमा की माँ की आंखें भी धोखा न खा सकीं कुछ क्षण बाद जो बात वे कह रहे थे, उसके समाप्त हो जाने पर फिर जैसे गहरी अन्यमनस्यकता में डूब गये। सुरमा की माँ अब अधिक अपने को रोक न सकीं, मृदुस्वर से पूछा—क्या बात है ?

—आँय— ? चौंक उठे सुरमा के पिता।

स्त्री ने जिज्ञासा की—तुम्हें अकस्मात् क्या हो गया कि उस समय इस प्रकार चौंक पड़े ? फिर भी जैसे बहुत तन्मय होकर सोच रहे हो !

—बहुत समय बाद अकस्मात् जैसे माँ को देखा। एक गहरी साँस छोड़ते हुए चटर्जी साहब ने कहा। एकदम मेरी माँ। अविकल ! अन्तर, यह युवती थोड़ी आधुनिका है।

—कौन ? क्या कहते हो ?

—लाल पाढ़ वाली गरद की साड़ी पहने हुए एक युवती अभी घर में गयी है। देखा है न ? श्यामवर्ण, बड़े-बड़े नेत्र, सिरमें सिन्दूर का टीका, थोड़ा बड़ा, कट्टर हिन्दू के घर में जैसा पहना जाता है। एकदम मेरी माँ, बचपन में जैसा देखता था !

इसके उत्तर में सुरमा की माँ क्या बोलतीं, चुप रहीं। चटर्जी साहब भी कई मिनटों के लिये चुप हो गये थे। इसके बाद अकस्मात् थोड़ा सामने झुक कर मृदु स्वर में बोले क्या तुम पता लगा सकती हो ?

कौन है यह युवती ? सहज में पहचान सकती हो ? बहुत कोमल चेहरा, कोमल पत्ते के समान श्याम वर्ण, बड़े-बड़े नेत्र, माथे पर सिन्दूर का टीका थोड़ा। सहज में ही पहचान ली जायगी। देखो न! देखोगी ?

सुरमा की माँ उनके अनुरोध की उपेक्षा न कर सकीं। और सहज में ही सुमति को जान लिया था। उन्होंने लौट कर कहा था यहाँ जो नये मुन्सिफ आये हैं, मिस्टर घोषाल, वह उन्हीं की स्त्री हैं।

—थर्ड मुन्सिफ की स्त्री ? थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले—अविकल मेरी माँ। मुख पर जिस प्रकार मेरे सिर पर केशों की एक भँवर है इस युवती की चोटी के सिर पर भी उसी प्रकार एक भँवर है। ऐसी ही मेरी माँ को भी थी। उस दिन रात के समय चटर्जी साहब मद्य-पान कर माँ के लिये जोर-जोर से रोने लगे। निश्चय मेरी माँ! इस जन्म की—

सुरमा की माँ ने कहा—पुनर्जन्म ? कहो मत, लोग सुनकर हँसेंगे।

हठात् चटर्जी साहब बोले—ऐसा न होने पर इतना सादृश्य कैसे होता ? हाँ हो सकता है। सुरमा, बेटी तुम कल एक बार इस युवती के पास जाना। तुम स्वच्छन्द जा सकती हो। ज्ञात कर आओ उसके बाप का नाम क्या है ? दादा का नाम क्या है ? घर कहाँ है ?

सुरमा की माँ की पूरी सम्मति नहीं थी, किन्तु प्रौढ़ पिता को इस तरह बच्चों के समान माँ-माँ करते देख सुरमा को वेदना हुई इससे वह गये बिना न रह सकी।

पहले सुमति अवाक् और स्तम्भित हो गयी। स्वयं जज साहब की कन्या आयी हैं, कालेज शिक्षिता आधुनिका कन्या! जो कन्या समाज

तथा सभा में उनसे बहुत दूर एवं ऊंचे स्थान पर बैठती है। वह स्वयं आयी है उसके घर।

सुरमा ने छिपाया नहीं। उसने हँसकर कहा था—आप शायद देखने में अविकल मेरी दादी जैसी हैं। यहाँ तक की आपकी चोटी के सामने के केशों की एक भवँर भी। मेरे पिता में एक और इण्टरनल चाइल्ड अर्थात् चिरन्तन बालक निवास करता है। माँ का नाम लेकर प्रायः रोते हैं। कल जोर जोर से रोते थे। इसीलिये आयी हूँ, आपके साथ दादी का सम्बन्ध जोड़ने।

सुमति कुछ देर तक स्थिर दृष्टि से सुरमा की ओर देखती रही।

सुरमा ने हँस कर कहा—आश्चर्य करती हैं? आश्चर्य करने की बात ही है। किन्तु आप के पिता का घर कहाँ है? क्या आप देखने में अविकल अपनी दादी की तरह हैं?

सुमति ने कहा—नहीं। फिर भी मेरी नानी के साथ मेरा चेहरा खूब मिलता है। माँ कहती हैं—अविकल।

इस उत्तर से वास्तविक सम्बन्ध जानने में देर न लगी, सुमति थी देखने में अपनी नानी जैसी। नानी उसके जन्म के कई वर्षों बाद तक जीवित रहीं, नहीं तो इस घटना के बाद लोग कहते, उन्होंने ही फिर सुमति के रूप में जन्म लिया है। और दूसरे धर्म ग्रहण किये हुए अरविन्द चटर्जी जज साहब के साथ इस भेंट होने की एक विचित्र व्याख्या की जाती। लोग कहते कि वे जज साहब-पुत्र-का सम्मान पाने के लिये ही लौट आयी हैं। ये बातें सुमति ने नहीं कहीं, कहीं थीं सुरमा ने। सुमति खूब हँसी। वह खूब हँस सकती थी। ठीक

इसी समय घर के बाहर ज्ञानेन्द्रनाथ आकर उपस्थित हो गये। दरवाजे पर जज साहब के अर्दली और गाड़ी को देखकर क्या करना चाहिये सोच न पाने के कारण वहीं खड़े हो गये थे। अपने ही घर अनजान के समान समस्त दिन मुंसफी कोर्ट में भाड़े और माल के मुकदमे के जंजाल को छोड़-कर कलम घिसने के बाद श्रान्त शरीर और क्लान्त मास्तिष्क लेकर तीन मील बाइसिकिल दौड़ाते हुए लौटकर देखा था घर का दरवाजा एक प्रकार से बन्द है। खुला रहने पर भी प्रवेशाधिकार नहीं। बाहर के घर में सुमति के साथ बात करते-करते सुरमा ने ही ज्ञानेन्द्रनाथ की इस 'न ययो न तस्थौ', अवस्था देख पायी थी और कौतुकपूर्ण आयु और स्वभाव-धर्म से कौतुकमयी हो उठी थीं।

(घ)

हृदय!

सुरमा चौंक पड़ीं। स्वामी के बँगले में चले जाने के बाद से ही सुरमा स्तब्ध होकर खड़ी थीं। स्वामी की भयार्त अवस्था और पीठ और छाती की चोट के चिह्नों को देख कर भूतकाल की बातें स्मरण पड़ गयी थीं। सुमति की इस मर्मान्तिक मृत्युस्मृति की वेदना में उसके अपने तरुण जीवन के प्राथमिक प्रेम के रंगीन दिन की छाया स्पष्ट हो रही थी। काले कोयले की एक ढेर पर कई मरी हुई तितलियों के समान।

स्वामी का कण्ठस्वर सुनकर वह चौंक पड़ीं। पाजामा, पंजाबी और रबर का स्लीपर पैरों में पहन कर कब आये थे, जान न पायीं। वह बँगले की ओर पीठ कर रक्तसन्ध्या की ओर खड़ी-खड़ी देख रही थीं।

ज्ञानेन्द्रनाथ कुर्सी खींच कर बैठ गये, उनके नेत्रों और मुँह पर अब भी व्याकुलता छा रही थी। उनको देख सुरमा शंकित हो गयीं, ऐसा लगा जैसे बहुत क्लान्त हों। सुरमा आगे बढ़ कर मि० घोषाल के चेयर के पीछे खड़ी हो गयीं और गाढ़े प्रेम से उनके कन्धे पर दोनों हाथ रख कर बोलीं—एक बार डाक्टर को खबर दूँ ?

—डाक्टर ? थोड़ा आश्चर्य हुआ ज्ञानेन्द्रनाथ को।

—क्यों ?

—तुम अत्यन्त अपसेट हो गये हो ? जान पड़ता है कि तुम समझ नहीं पा रहे हो। अभी तक—।

पीछे की ओर हाथ बढ़ा कर स्त्री का हाथ पकड़ते हुए ज्ञानेन्द्र बाबू बोले—नहीं। मैं ठीक हूँ।

—ना। तुम अपनी आज की दशा ठीक नहीं समझ पाते हो। आग से तुम भय करते हो। थोड़े से भी चौंक पड़ते हो, किन्तु ऐसी दशा नहीं होती। तुम्हें विश्राम करना उचित है। और इस प्रकार परिश्रम—।

बाधा देकर ज्ञानेन्द्रनाथ ने हँस कर कहा—नहीं। मैं ठीक हूँ। आज की घटना कुछ अस्वाभाविक है।

—आग क्या अधिक जल उठी थी ?

—ओह! तुम उसकी कल्पना नहीं कर सकती। स्नानघर की खिड़की के शीशे के बीच के प्रतिबिम्ब से सारा घर लाल हो गया था। अवश्य मैं भी कुछ-कुछ, क्या कहूँ, Dreamy, स्वप्नातुर था। ठीक कड़ी भूमि पर खड़ा नहीं था। मैं अधिक चौंक गया हूँ।

—इसका अर्थ ?

—बतलाता हूँ। सामने आओ, क्या पीछे रहने पर बात की जाती है ?

सुरमा सामने की कुर्सी पर बैठ गयीं। उन दोनों के पीछे बावरची चाय की ट्रे और भोजन लेकर प्रतीक्षा कर रहा था। साहब और मेम साहब की इस हाथ पकड़ा-पकड़ी की अवस्था में सामने नहीं आ सकता था। वह इस बार सुयोग पाकर आगे आया और टेबुल पर चायका सामान रख दिया।

सुरमा बोलीं तुम जाओ। मैं सब ठीक कर लेती हूँ। ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा—इस बार तुम्हारा कसूर माफ किया गया, लेकिन दूसरी बार नहीं किया जायगा। होशियार रहना चाहिये। तुम्हारे कपड़े में आग लग जाती, तो क्या होता ?

सलाम कर बावरची चला गया।

ज्ञानेन्द्रनाथ बोले—आज की घटनाओं ने प्रारम्भ से ही मुझको थोड़ा क्या कहूँ—थोड़ा भाव-प्रवण कर रखा था। यहाँ आते ही तुम्हें देखा, तुम सन्ध्या के आकाश की ओर ताक रही हो। वही पुराना कवि-कवि भाव ! बहुत दिनों के बाद बोली, कविता सुनाओगी। पुरानी सूखी हुई भूमि पर नयी वर्षा का जल पड़ने से जिस प्रकार वह भी थोड़ा सरस हो जाती है। मेरा मन भी ठीक वैसा ही हो गया। एक साथ अनेक बातें याद आने लगीं। रक्तसन्ध्या के दिन वर्दवान के जज की कोठी में तुमको देखने की बात। घर में घुसते ही दरवाजे के ऊपर तुम्हारा वही चित्र—दैट रिमाइंडेड मी—वही प्रथम दिन के परिचय होने की

बात स्मरण पड़ गयी। स्वाभाविक रूप से सुमति की भी याद आयी। उसी अभागिनी की बात सोचते स्नानघर में घुसा। गंजी खोलते समय रोज ही पीठ के जले चमड़े पर हाथ पड़ता है। आज भी पड़ा, किन्तु आज उस आग के सम्बन्ध की बातें भी याद आयीं। मन की इस विह्वल अवस्था में ही बाहर धधक-धधक कर आग जल उठी। मुझे लगा कि मुझे घेर कर आग जल रही है।

चाय का प्याला और खाने की तश्तरी सुरमा ने आगे बढ़ा दीं। मृदु स्वर से बोलीं—तो भी कहूंगी कि आज का मामला जैसे कैसा है! आग से तुम्हें भय करना स्वाभाविक है। किन्तु—।

आग से भय करना उनके लिये स्वाभाविक है। अकस्मात् आग देख कर चौंक उठते हैं, फूस के घर में सो नहीं पाते। रात में तकिये के नीचे दियासलाई तक नहीं रखते। सिगरेट भी नहीं पीते। घर में पेट्रोल—किरासिन का टिन नहीं रखते। किन्तु आज जैसे भय से कैसे हो गये हैं।

चाय के प्याले में चम्मच हिलाते-हिलाते हँस कर ज्ञानेन्द्र बाबू सारी घटनाओं को हल्की कर देने के अभिप्राय से ही हँस कर सुरमा की ओर तर्जनी बढ़ाया और दिखा कर कहा—वह सब कुछ नहीं। तुम; सब कुछ के लिये उत्तरदायी तुम हो।

—मैं?

—हाँ तुम। कवि होने पर कहता, 'लम्बे केश में ढोकर लायी हो किस मोह से उस दिन का परिमल।' कहा है न—आज तुम्हें देखकर प्रथम दिन तुम्हें देखने की याद पड़ गयी और सब गोलमाल कर दिया!

जज साहब की कालेज शिक्षिता युवती कन्या ने जिस प्रकार सिर घुसा दिया था, आज भी उसी प्रकार सिर घूम गया।

सुरमा देवी हँस पड़ीं।

ज्ञानेन्द्र बाबू बोले—ओह! उस दिन जो सम्बोधन किया था। बुद्धू!

इस बार सुरमा जोर से हँस पड़ीं। उन्होंने कहा—कहूँगी नहीं? अपने घर के दरवाजे पर आकर घर में जज साहब की कालेज शिक्षिता कन्या आयी है सुनते ही एक आधुनिक तरुण युवक पेट जलाने वाली भूख लेकर मुँह उदास कर लौटा जा रहा था। तुम्हीं बतलाओ इसको क्या कहा जाय? ग्रामीण कहां का!

उस दिन घर के दरवाजे से मुख उदास कर सत्य ही लौटे जा रहे थे थर्ड मुन्सिफ ज्ञानेन्द्रनाथ। क्या करें? जज साहब की कालेज-शिक्षिता कन्या, कहाँ, क्या दोष निकाल कर मिजाज खराब कर दे, कौन जाने? इससे तो फिर जाना ही अच्छा। ठीक इसी समय सामने के घर का परदा हटा कर सुरमा ही निकल पड़ी थी, ज्ञानेन्द्रनाथ की ऐसी हैरानी देख कर मन ही मन उसका कौतूहल जाग उठा था। उस दिन वह थी जज साहब की कन्या और ज्ञानेन्द्रनाथ मुंसिफ भी नहीं; आत्मीयता के माधुर्य ने पद-मर्यादा की पृथकता की कठोरता भुला दी थी। और ऐसे विचित्र क्षेत्र में तनिक मोह की सृष्टि भी कर दी थी। इसीलिये सुमति के आगे परदा सरका कर मृदु हास्य के साथ कहा था—आइये मि० घोषाल; बाहर क्यों खड़े हैं? मैं बैठी हुई आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। वार्तालाप करने आयी हूँ।

सुमति ने सुरमा के पास से मुँह बढ़ा कर हँसते हुए कहा था-आओ। सुरमा मेरी ममेरी बहिन है। इसके पिता मेरे वे ही मामा हैं, जो घर से चले जाकर—।

सुमति ने शेष बात अप्रकट ही रखी।

—कैसा आश्चर्य है!

केवल यही बात उस रोज ज्ञानेन्द्रनाथ ने खोज पायी थी।

सुरमा बोली—सत्य कल्पना से भी अनोखा है।

ज्ञानेन्द्रनाथ किन्तु तब भी नहीं बैठे। शायद बैठने का साहस ही नहीं हो रहा था अथवा यह अवस्था ही उन्हें स्वाभाविक नहीं जान पड़ती थी। सुरमा ने ही कहा था—किन्तु आप बैठिये। खड़े क्यों हैं? मैं तो आप लोगों की आत्मीया हूँ। अपना आदमी।

खूब भाव-भंगी कर थोड़ा गर्दन हिलाते हुए अपने नेत्र बड़े कर वक्र हँसी हँसते हुए सुमति ने कहा—बहुत प्यारी आत्मीया—साली!

एक क्षणके लिये सुरमा को इसमें ग्राम्यता का स्पर्श लगा था। सभ्यता पर ध्यान रखते हुए ज्ञानेन्द्रनाथ के समान सुपुरुष अप्रतिभ विव्रत तरुणी को विद्रुप कर तृप्ति नहीं पा रहे थे। इस ग्रामीण स्पर्श के सुयोग से उछल-कर वह बोल उठी थीं -- होनेसे क्या होगा, मेरे बहनाई साहब तो एकदम बछिया के ताऊ हैं।

सुमति को हँसी आ गयी थी।

दूसरे क्षण अपने को सुधारने के लिये ही सुरमाने कहा—माफ कीजि-येगा, क्रोध मत कीजियेगा।

सुमति फिर उसी प्रकार गर्दन हिलाकर बोली—सालियाँ तो इससे भी

भद्दी हँसी करती हैं। यह तो फिर भी शिक्षिता आधुनिका साली; यह मजाक भद्दा नहीं, चोखा है।

इसी बीच ज्ञानेन्द्रनाथ ने एक अच्छी बात खोज पायी, वे बोले—साली का मजाक खराब होने पर भी खराब नहीं लगता, चोखा होने पर भी शरीर में चोट नहीं पहुँचाता। तुमने महाभारत में अर्जुन के प्रणाम-बाण—चुम्बन-बाण—की बातें पढ़ी है न? बाण—एक दम तीक्ष्ण चमकते हुए लोहे के फल लगे हुए तीर आकर पैरों पर लोट जाते। एकदम सिर पर आकर मृदु स्पर्श देकर गिर पड़ते। सालियों का मजाक भी वैसा ही है। उनकी बातें अन्यों के लिये तीक्ष्ण विषैली मालूम होने पर भी बहनोइयों के कानों के समीप पुष्पवाण हो जाती हैं। इसके बाद उसके समान साली!

सुमति ने चाय बनाते-बनाते एक क्षण के लिये सिर उठा कर उनकी ओर देखा। दोनों कुञ्चित भौहों के नीचे वह दृष्टि थी तीव्र और तीक्ष्ण। उसने कहा—कैसी बातें हैं तुम्हारी! वह तुम्हें पुष्पवाण मारने क्यों जायगी? पुष्पवाण किसे कहते हैं? सुरमा क्या सोचेगी?

ज्ञानेन्द्रनाथ संकुचित हो गये। घर का वातावरण निरानन्दमय हो उठा।

(ङ)

यह बात दोनों को ही स्मरण हो आयी। अतीनकी बातों की सरस स्मृति से जो आनन्दमुखरता सन्ध्या के आकाश में तारों के निकलने के समान उदय हो रही थी उसके ऊपर एक मेघ छा गया। दोनों प्रायः एक साथ चुप हो गये। कुछ देर बाद सुरमा देवी ने पूछा – और थोड़ी चाय न लोगे ?

—नहीं।

स्थिर दृष्टि से दिगन्त की ओर देख रहे थे ज्ञानेन्द्रनाथ। नेत्रकी ज्योति अस्वाभाविक रूप से उज्वल हो गयी थी। नहीं कह कर ही वे कुर्सी से उठ पड़े। दोनों हाथ पीछे की ओर मोड़ कर टहलने लगे। अहाते के उस ओर एक चरवाहा एक गाय हाँके जा रहा था। ओह! सुमति ने उसे उससे भी निष्ठुर ताड़ना दी थी। ओह! गाय भैंस के दलाल सिरे पर सुई या आलपीन लगी हुई लाठी से खोंचते हुए जैसे उन्हें भगाये लिये जाते हैं, उसी प्रकार उन्हें भगाये लिये गयी थी! कितनी निष्ठुर यंत्रणा थी, उस यंत्रणा में उन्होंने जीवन के सारे विश्वास खो दिये थे। ईश्वर का विश्वास, धर्म का विश्वास, सभी विश्वास। ईश्वर के नाम पर उन्होंने शपथ ली थी सुमति के निकट, धर्म के नाम पर शपथ ली थी। सुमति मानती न थी। दिन में दो-तीन बार कहती—बोलो, भगवान की शपथ लेकर बोलो, बोलो धर्म का मुँह देखकर बोलो।

उन्होंने कहा था। उसकी शपथ लेकर कहने पर बोली थी—मेरे मरने से तुम्हारा क्या आता-जाता है। वह तो अच्छा ही होगा ?

उसी प्रथम दिन से ही सुमति ने सन्देह किया था। उसने बार बार

कहा था–उसी, उसी एक बातसे ही मैंने जान लिया था। उसीप्रथम दिन। उसकी दोनों आँखें जलने लगतीं। प्रथम दिन रहस्य के आवरण में जो बातें उसने कहीं, उनमें से प्रत्येक में इस सन्देह का अभास था। उस दिन ज्ञानेन्द्र-नाथ और सुरमा दोनों में से किसी ने भी समझ नहीं पाया था।

अरविन्द चटर्जी जैसे उदार व्यक्ति को भी वह कठोर बचन कहती थी। अपनी माँ के साथ घनिष्ठ सादृश्य के कारण चटर्जी साहब के स्नेह की सीमा न रही। केवल सुमति से ही उनकी साध पूरी नहीं हुई, सुमति के स्वामी होने कारण ज्ञानेन्द्रनाथ से भी गाढ़ा स्नेह हो गया था। वह स्नेह गाढ़ से गाढ़तर हो गया ज्ञानेन्द्रनाथ के बुद्धि से प्रकाशित हृदय के स्पर्श से, ज्ञानेन्द्रनाथ के उदार मन और प्रसन्न मुखश्री के आकर्षण से। उन्होंने उनको निकट खींच लिया। सुमति उनके पास अधिक जाना नहीं चाहती थी, अरविन्द बाबू ज्ञानेन्द्रनाथ को अपने समीप खींच कर उन्हीं के हाथ सुमति को स्नेह का अजस्र दान देना चाहते थे।

उनके जीवन में उन्नति का पथ उन्होंने प्रशस्त कर दिया था। फैसला लिखने की रीति, न्याय के सिद्धान्त पर पहुँचने की पद्धति उन्होंने सिखा दी थी। किन्तु यह सब सुमति को किसी प्रकार भी सहन नहीं होता। उनकी भेजी हुई कोई वस्तु जब ज्ञानेन्द्रनाथ ले आते तो वह वापस न भेजती अवश्य, किन्तु उसे हाथ से न छूती। कहती—यहीं रख दो। क्या कहूँ देने को। और क्या कहूँ नानी के साथ अपने चेहरे की समानता को। क्या कहूं जज साहब की वृद्धावस्था में उफनाती हुई भक्ति को। गाय मार कर जूता दान! वही दान मुझे लेना पड़ रहा है। फैसला लिखने या विचार पद्धति सिखलाने के सम्बन्ध में कहती—मुँह में राख, सिखाने

वाले के मुँह में। जो एक स्त्री के लिये धर्म छोड़ सकता है, वह अधार्मिक है। जो अधार्मिक है, वह न्याय क्या करेगा? धर्म न रहने से न्याय होता है? और उसी व्यक्ति से न्याय सीखना!

रहने दो। सुमति की बात रहने दो। सुमति का चित्र दीवार पर टँगे रहने पर भी परदे से ढँका रहता है। सुमति की बात रहने दो! अरविन्द बाबू कहते, सुमति की बात लेकर कहते—क्या करोगे? सहन करो। उससे प्रेम करो। प्रेम ईश्वर है और ईश्वर प्रेम है।

चटर्जी साहब कहते—ईश्वर के अस्तित्व में मैं विश्वास नहीं करता। ब्राह्म-ब्राह्म में भी नहीं, मैंने एक स्त्री से प्रेम किया, वह ब्राह्म परिवार की थी, इसीलिये मैं ब्राह्म हुआ। तो ईश्वरत्व की कल्पना में मैं विश्वास करता हूँ, वहाँ पहुँचने की चेष्टा करता हूँ। ज्ञानेन्द्र, सब मनुष्य करते हैं, सब मनुष्य। वही ईश्वरत्व! एक पवित्र महिमा-सम्पन्न मनुष्य की मानसिक सत्ता में वह प्रकाशित होता है।

सुमति की छुद्रता, उनके प्रेम के लिये धर्मान्तर ग्रहण के व्यक्तिगत प्रसंग से वे कभी-कभी चले जाते सार्वजनिक जीवन दर्शन के महिमामय प्रांगण में, मुख की सारी उदासीनता दूर हो जाती, और इस रक्तसन्ध्या की आभा के समान एक प्रदीप्त प्रसन्न प्रभा से उनका मुख उद्भासित होने लगता। दूरदिगन्त में दृष्टि स्थिर कर मानसलोक से वे बातें करते—अब मैं अनुभव कर रहा हूं मानवचेतना द्वारा ईश्वरत्व ही अपने को प्रकाशित करता है। ईश्वर नहीं, ईश्वरता, हाँ ईश्वरता, हाँ, कहते-कहते मुख पर स्मित हास्य की रेखायें फूटने लगतीं।

उस समय भारतवर्ष में गांधी युग आरम्भ हुआ था। सन १९३०

के कुछ पूर्व। उन्होंने कहा था—गांधी में उसका आभास पाता हूं। बुद्ध में वह प्रकाशित हुआ था। रवीन्द्र बाबू के काव्य में उसकी छटा पाता हूँ। वहाँ बुद्धि से पहुँच सकते हैं, प्राण से अपनी श्रद्धा से नहीं पहुँच सकते। नहीं पहुँच सकते। मद्य पान किये बिना मैं नहीं रह सकता। और भी मुझमें अनेक दुर्बलतायें हैं। किन्तु दूसरे के प्रति अन्याय मैं नहीं करता। नहीं करूँगा। यही है प्रथम शिक्षा। न्याय विभाग में मुझे उसे व्यवहार में लाने का सौभाग्य मिला, मैं बँगला में उसे क्या कहूँ? अनुशीलन? हाँ, वही। फैसला लिखते समय मैं उसी प्रकार फैसला लिखने की चेष्टा करता हूँ, लिखता हूं, जिसको कहा जा सकता है धर्म-विचार। दैवी न्याय!

दैवी न्याय शब्द उन्हींका कथन है।

—हुजूर!

चौंक कर ज्ञानेन्द्रनाथ ने पीछे देखा। बेयरा पुकारता है।

—इधर कल रात के समय एक साँप निकला था, हुजूर। कुछ ठहर कर फिर बोला, उसको जान पड़ता है याद दिला दिया—अन्धकार हो गया है।

ज्ञानेन्द्र नाथ ने मुख उठा कर एक बार चारों ओर दृष्टि डाली। सन्ध्या हो गयी है। केवल इतना ही नहीं, फिर आकाश में मेघ दिखाई दे रहे हैं। दूर पर दिग्वलय में ग्राम की वन-रेखा का चिह्न भी अन्धकार में विलुप्त हो गया है। वह प्रान्तर में फैलकर क्रमशः गाढ़ा होकर उनकी ओर बढ़ा आ रहा है। बँगले की ओर देखा, उसमें प्रकाश जल रहा है। सुरमा भी बाग में नहीं है, वह न जाने कब उठकर बँगले के भीतर चली गयी है। बिना शब्द किये ही चली गयी है।

तीन

(क)

सुरमा घर की खिड़की के सामने स्तब्ध होकर खड़ी थीं, आकाश की ओर देख कर अतीत की बातें सोच रही थीं। सुमति की बात ? आश्चर्यजनक सुमति। जितनी ही मधुर, उतनी ही कटु। जितनी कोमल, उतनी ही उग्र, तीव्र। जितना अमृत उतना विष। अमृत उसके भाग्य में नहीं था, उसने पाया था विष। वह विष आग बन कर जला था। सुमति के जल कर मरने का स्मरण आते ही सुरमा को लगता था, अभागिनी अपने हाथ से लगायी हुई सन्देह की अग्नि में स्वयं ही जल कर मर गयी। वह था जैसे उसके जीवन का विचित्र अमोघ परिणाम प्रथम दिन से ही सुमति ने उसपर सन्देह किया। सुरमा ने कौतुल अनुभव किया। सोचा कि उसने ज्ञानेन्द्रनाथ से प्रेम किया है अथवा प्रेम करेगी ही। प्रेम अन्धा है। प्रेम में किसको प्रेम किया, क्यों प्रेम किया ये प्रश्न ही नहीं उठते। फिर भी वह यूरोप में शिक्षित जज साहब की कन्या है, बाल्यपन से उसी शिक्षा से शिक्षिता उस समय बी० ए० में पढ़ रही थी, उसको इतना ज्ञान तो था ही कि विवाहित, कट्टर हिन्दू परिवार के युवक, पद में मुन्सिफ के प्रेम में पड़ने की अपेक्षा हास्यजनक निर्बुद्धिता कम से कम उसके लिये और कुछ नहीं हो सकती। मन ही मन आज भी क्रोध करती है। सुमति के समान हिन्दू परिवार की अर्द्ध शिक्षिता युवती सोचती है कि बिलायत से लौटे हुए समाज की युवतियों में सतीत्व नाम को भी नहीं होता। वे तितलियों के समान स्वाधीन भाव से प्रेम-क्रीड़ा

करती फिरती हैं। ज्ञानेन्द्रनाथ के सुमति के स्वामी होने के कारण ही उसने उनसे हास्य-परिहास की बातें की थीं। ज्ञानेन्द्रनाथ सुन्दर, विद्वान थे किन्तु उनकी ओर प्रेम पूर्वक दृष्टिपात करने की बात उनके मन में स्वप्न में भी नहीं आयी थी। उसने उन्हें सुमति के स्वामी, सत्पुरुष मित्र के रूप में ग्रहण करना चाहा। सुमति अभागिनी ने ही अपवाद कर उसका हठ जगा दिया। उसी हठ वश सप्रेम दृष्टि का अभिनय करते जाकर वह उनसे लिपट गयी। सुमति ने जैसे सुरमा को ठेल-ठेल कर ज्ञानेन्द्रनाथ के शरीर पर ढकेल दिया।

सुमति का सन्देह और ईर्ष्या देख कर वह ज्ञानेन्द्रनाथ को लेकर खेल खेलने गयी। सुमति को दिखा कर वह ज्ञान बाबू के साथ कुछ अन्तरंग भाव से मिलने-जुलने का अभिनय करने गयी। सुमति और जल-भुन गयी। बेचारा थर्ड मुन्सिफ एक ओर हुआ विह्वल और दूसरी ओर हुआ अत्यन्त हैरान, सुरमा के हास्य का अन्त नहीं। वह नव यौवन के उल्लास का प्रश्रय पाकर उमड़ पड़ा। प्रश्रय था उसी आत्मीयता का। छुट्टी के बाद कलकत्ता जाकर उसने कविता में पत्र लिखा। उसने इच्छा करके ही लिखा सुमति को जलाने के लिये। केवल उसके पिता ही सुमति से प्रेम नहीं करते थे, वरन् वह भी करती थी। अनुग्रह के साथ स्नेह-मिश्रित जो वस्तु है, उसके दाता होने के समान सन्तोष और नहीं है। परम स्नेह से छोटे शिशु को क्रोधित करना जैसे भला लगता है, उसी प्रकार भला लगता था सुमति को जलाना। उससे डेढ़ वर्ष बड़ी थी सुमति, किन्तु मन की गठन, बुद्धि में, आचरण में सुरमा ही बड़ी थी। इसके साथ ही वह इसे बछिया के ताऊ हिन्दू बहनोई को बनाने में एक अनास्वादित

कौतुक का आनन्द पाती थी। प्रथम कविता उसे आज भी याद है। सुमति के पत्र में ही लिखा था—बहनोई जी से कहना—

सुमति तुम्हारी पत्नी, दुर्मति है सालिका।
तम्बाकू की पाइप में, सुमति कलिका।
पवित्र हुक्का, अतः नहीं निकोटिन।
सुमति गरद धोती, मैं हूँ टाई-पिन।
पिन का धर्म खोंचना, निकोटिन का खाँसी,
धन्यवाद, सहती हूँ सुख भरी हाँसी।

उत्तर में सुमति के पत्र में नीचे की दो पक्तियों की कविता आयी थी।

धन्यवाद का काम नहीं, अन्यवाद के साथ।
अर्थात् क्षमा करना देवी यदि हो अपराध ॥

सुरमा ने कविता की दो लाइनें पढ़ कर भौंहे चढ़ा लीं। उसको ओठों पर विचित्र हँसी आगयी। मन ही मन कहा—हूँ! बुद्धिमान तो बहुत है! इसमें धार है, मिश्री का ताल नहीं, मिश्री की छुरी है।

इसके बादअकस्मात् अघटन घटना घट गयी। एक पर एक दो। एक विख्यात अंग्रेजी पत्र में एक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ "एक अहिंसक सिंह और उसके शावक।" इसमें गान्धीजी पर आक्रमण किया गया था। लेखक का कथन था कि एक सिंह सम्भवतः अभ्यास और साधना से अहिंसक हो सकता है किन्तु इससे ही क्या मान लिया जा सकता है कि उसके शावक भी अपने स्वभाव-धर्म-

हिंसा-को न लेकर जन्म ग्रहण करेंगे। या रक्त के प्रति उनके हृदयों में दारुण अरुचि उत्पन्न होगी? प्रबन्ध की भाषा जैसी जोरदार थी युक्ति भी वैसी ही छुरे की धार के समान। लेखक ने बुद्ध-काल से लेकर आजतक के इतिहास का उदाहरण देकर सिद्ध किया था कि अहिंसा की साधना अन्यान्य धर्मों के समान व्यक्तिगत जीवन में ही सफल हो सकती है। राष्ट्र में इस बात को प्रयोग करने के समान अयुक्ति-पूर्ण और कुछ नहीं है। यहाँ तक कि सम्प्रदाय में भी यह वाद न कभी सफल हुआ है और न हो सकता है। इस प्रबन्ध से कुछ दिनों के लिये चारों ओर, विशेष कर शिक्षित समाज में, खूब शोर-गुल मच गया था। सुरमा ने भी उसे पढ़ा। लेखक का कथन उसे अनुचित नहीं जँचा। उस समय नौकरी, विशेष कर सरकारी नौकरी में जो हैं, और जो नौकरी में नहीं हैं किन्तु पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंग गये हैं, ऐसे लोग मन-प्राण से विश्वास करते थे कि गान्धीजी की यह अहिंसा अत्यन्त अवास्तविक है, और इसीलिये अवश्य असफल हो जायगी। केवल इतना ही नहीं, बहुत से अत्यधिक आधुनिक यूरोपीय मतवाद और सभ्यता विरोधी इस गान्धीवादी आन्दोलन को अपने ही विरोध में मानते थे। समाज में, समितियों में उनके विरुद्ध आलोचनाएँ होतीं। उन सभी की धारणा थी कि अहिंसा का यह मतवाद एक बाहरी आवरण मात्र है। सिंह चर्मावृत गर्दभ नहीं, गर्दभ चर्मावृत सिंह है। सुरमा के पिता अरविन्द बाबू भिन्न विचार के पुरुष थे। उनकी गान्धीजी के प्रति असाधारण श्रद्धा थी। किन्तु फिर भी जज साहब होने के कारण वे और उनके साथ ही उनकी स्त्री-कन्या भी बाध्य होकर ही विरोधी शिविर

के मनुष्य गिने जाते और वे स्वयं भी अज्ञात भाव से जान पड़ता है, ऐसा ही समझते थे। इसी कारण उन्हें उस प्रबन्ध का विषय अच्छा लगा। लिखने की शैली भी अत्यन्त तीव्र, वक्र थी। कुछ दिन बाद उसके पिताने उसको लिखा—यह प्रबन्ध ज्ञानेन्द्र ने लिखा है। मुझे अवश्य दिखाया था। अच्छा लिखा है, पढ़ कर देखना।

सुरमा के विस्मय की सीमा न रही। यह लेख, सुमनि के मुँहचोर कार्तिकेय के कलम से निकला है! ठीक, जैसे अच्छा नहीं लगा, जान पड़ा वह ठगा गई है: ज्ञानेन्द्रनाथ ने ही उसको अच्छा मनुष्य बन कर ठग लिया है।

इसके कुछ दिन बाद ही एक और विस्मय। अकस्मात् उसदिन कालेज-होस्टल में एक नया टेनिस रैकेट हाथ में लेकर भेंट करने गये सुमनि के पति! टेनिस रैकेट! सुरमा को हंसी आ गयी। उच्चपद का दण्ड। गँवई गाँव का युवक, अनेक निद्राहीन रातों में अध्ययन कर अच्छा परिणाम होने पर एक बड़ी नौकरी पायी है उसी कारण अफसरों के क्लब में चन्दा तो गिनना ही पड़ता है, इसके अतिरिक्त भी इतने रुपये के खर्च कर टेसिन का रैकेट खरीद कर बेचारे को शायद फिसलने के कारण गिरने से पैर तुड़वाना ही पड़ेगा। हँस कर उसने कहा—खेलना जानते हैं, या श्रीगणेश करेंगे?

ज्ञानेन्द्रबाबू ने कहा—सिखाइयेगा?

—सिखाने से ही क्या सब चीजें सबसे होती हैं? अपना भरोसा है?

—वह है। बचपन में अच्छा गुल्ली-डण्डा खेलता था।

सुरमा खिलखिला कर हँस पड़ी। इसके बाद कहा—नहीं सकूंगी, ऐसा नहीं है, किन्तु गुरुदक्षिणा क्या देंगे ?

—बोलिये क्या देना होगा ? विचार कर लूं।

—अपनी यह कार्तिकी ढंग की दोनों मूँछें बनवा देनी होंगी।

हँसकर ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा—आपने विपद में डाल दिया। कारण मूछों की यह जोड़ी सुमति को बहुत प्रिय है।

उसकी एक पालतू बिल्ली थी, वह मर गयी। सुमति मोछों की इसी जोड़ी को देख कर ही उसका दुःख भूल गयी है।

सुरमा ने वक्र हँसी हँस कर कहा—तब तो इन्हें बनवाना ही पड़ेगा। मैं सुमति को एक अच्छी काबुली बिल्ली उपहार दूँगी।

इसके बाद ही बात का विषय बदल गया। पास के टेबिल पर पुराने समाचारपत्रों पर लाल-नीले पेंसिल से दाग किया हुआ था। उसी पर ज्ञानेन्द्रनाथ की दृष्टि पड़ गयी। उन्होंने विस्मयपूर्वक कागज खींच लिया और बगल में लिखे हुए अनेक प्रकार के मन्तव्यों पर दृष्टि डाल कर हँसते हुए कहा—अरे बापरे! मनुष्य अवश्य घर में मरा है! ओह! कैसा कठिन-कठिन मन्तव्य है!

सुरमा ने ज्ञानेन्द्रनाथ पर आक्रमण किया। क्यों, यह नहीं कह सकती। कारण, मन्तव्यों में से कोई भी उसका लिखा नहीं था और जज साहब की पुत्री इस मतवाद का विरोधी मतवाद भी नहीं मानती थी। इसीलिये आज भी नहीं सोच पाती है कि क्यों उस दिन उसने उसपर ऐसा भीषण आक्रमण किया। उसने कहा—घर में वे मरे नहीं, मैं जानती हूँ कि वे मेरे सामने बैठे हैं। वे छद्मनाम की आड़ में बैठे हैं। यही कहकर

आक्रमण शुरू किया। इसके बाद अविश्रान्त शर-वर्षा। वे वाण जैसे किसी अदृश्य ढाल में लग कर भोथरे होकर निरीह वाण की लकड़ी के समान ही धूल में गिर पड़े। सुरमा ने थक कर कहा—सुन्दरमुँह की गाली खूब अच्छी लगी।

सुरमा भक से जल-भुन उठी, बोली—अन्य सुन्दर मुँहवालियों को पुकारूँ ? उन्हें बुला कर कहूँगी कि यह देखो उस कुख्यात प्रबन्ध के लेखक को ! देखेंगे ?

ज्ञानेन्द्रनाथ की दोनों आँखें भी भक से जल उठीं। यह सुरमा के नेत्रों से छिपा न रहा। वह विस्मित हो गयी। गोबर गणेश होने पर भी उसके हाथ में कलम देख कर विस्मय नहीं हुआ। शौक के बाबू कार्तिक के हाथ में खेल का तीर-धनुष्य भी अशोभन नहीं लगता, किन्तु ललाट की आग आँखों के कोने में आग बन कर जलने से क्या होता है ? किन्तु दूसरे ही क्षण ज्ञानेन्द्रनाथ वही निरीह गोपाल ज्ञानेन्द्रनाथ हो गये।

दूसरे ही क्षण हँस कर ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा—देखनेके लिये तैयार हूँ, किन्तु आज नहीं, कल। टेलिग्राम कर मैं सुमति को बुला लूँ। मेरी तरफ से वह वकील बन कर लड़ेगी। क्योंकि स्त्रियों की गाली-गलौज का जवाब और अयुक्तिसंगत युक्तियों के उत्तर में उसी प्रकार का जवाब देना मेरे लिये तो सम्भव नहीं है।

बहुत सी युवतियों के आ जाने से आलोचना बन्द हो गयी।

उसी के बाद दूसरी घटना। टेनिस रैकेट को लेकर ही घटना घटी।

(ख)

इस बार कार्तिक मास में पूजा थी। उसबार पिता पूजा की छुट्टी पन्द्रह दिन दार्जिलिंग में काट कर अपने कर्म स्थान पर लौट आये। संथाल परगने का निकटवर्ती वह शहर शरद काल से ही कई महीनों तक मनोरम हो जाता है। लौटते ही सुरमा ने सुना कि सुमति आदि पूजा की छुट्टी में घर नहीं गये, यहीं हैं, सुमति अस्वस्थ है। सुमतिने अभी पथ्य लिया है किन्तु दुर्वल है। चटर्जी साहब पूजा का तत्व, कपड़ा-तपड़ा, मिठाइयाँ लेकर स्वयं उनके घर गये। साथ में सुरमा भी गयी। लौटते समय सुरमा ने ज्ञानेन्द्रनाथ से कहा—तीसरे पहर आइयेगा। आज टेनिस का श्रीगणेश कर दूंगी।

चटर्जी साहब स्वयं अच्छा खेलते थे। उन्होंने एक समय स्त्री को भी सिखाया था। सुरमा ने बचपन से ही खेलने के कारण खेल में नाम कमाया था। उस दिन चटर्जी साहब खेलने नहीं आये। सुरमा ज्ञानेन्द्र-नाथ को लेकर अकेले खेलने गयी। पहले उसने सर्भ किया और बाल की वापसी-मार देखकर चकित हो गयी। वह बाल फिर मार न सकी। ज्ञानेन्द्र की मार पक्के खिलाड़ी की मार थी। सुरमा हार गयी।

खेल के अन्त में उसने कहा—आप अत्यन्त निपुण हैं। इससे भी अधिक आप कपटी हैं। भयानक पुरुष !

—क्यों ? क्या किया ?

—रहते हैं जैसे कितने निरीह आदमी हैं। भूजी मछली उल्टा खाने नहीं जानते, किन्तु—।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने हँस कर कहा—अब तो मेरी मुँछों की जोड़ी बच गयी न ?

उसी खेल के समय क्या से क्या हो गया ? वह ज्ञानेन्द्रनाथ के प्रति आकृष्ट हो गयी। सुमति उसपर चिढ़ गयी। सुरमा ने माना नहीं। बरन् उसपर क्रोधित हो गयी। वहाँ के टेनिस कम्पटीशन के समय हद हो गयी। बड़े दिन में सुरमा ने जाकर कम्पटीशन में योगदान किया, उसने ज्ञानेन्द्रनाथ को पार्टनर बनाया। फाइनल के दिन खेल जीत कर दोनों फोटो खिचवाने गये। फोटो लेने के पहले ज्ञानेन्द्र ने कहा—तुम्हारे साथ फोटो खिचाऊँगा, मूँछें नहीं बनवाऊँगा ?

इस खेल के अवसर पर ही "आप" छोड़कर परस्पर के लिये वे 'तुम' हो गये।

सुरमा हँस पड़ी। और उस दिन ज्ञानेन्द्रनाथ जब उसकी कोठी-से विदा होने लगे, तो उसने अपने एक गुच्छा केश काट कर और लिफाफे में भर कर उन्हें देते हुए कहा—मैं देती हूँ, अपनी दक्षिणा ! किन्तु फिर नहीं। किन्तु अब मैं तुमसे भेंट नहीं करूँगी, तुम भी नहीं करोगे। सुमति सहन नहीं कर पाती। आज उसने मुझसे स्पष्ट कहा है कि तुमने मेरा सर्वनाश कर दिया।

बहुत दिनों के बाद आज सुरमा आकर खड़ी हो गयी, उसी टेनिस फाइनल के बाद खिचवाये हुए फोटो के सामने। वे परस्पर की ओर ताक रहे हैं। फोकस के समय वे कैमरे की ओर ही ताक रहे थे, किन्तु ठीक चित्र खींचने के समय पर ही अनजान में परस्पर की ओर देख कर हँस पड़े थे। ज्ञानेन्द्रनाथ की कापी नहीं है, उसे सुमति—। इस घटना की स्मृति से सिर में आग जलने लगती है।

सुमति ईर्ष्या में आतुर ! अत्यन्त कठिन ईर्ष्या ! परलोक, प्रेतवाद में सुरमा विश्वास नहीं करती, किन्तु यह उसको विश्वास हो गया है कि मनुष्य की प्रकृति में विष हो या अमृत हो वही उसका स्वभाव-धर्म है। वह उसकी मृत्यु होने पर भी नहीं मरता। वह रहता है और क्रिया करता जाता है। सुमति की ईर्ष्या आज भी क्रिया करती जा रही है। जीवन के आनन्द के मुहूर्त में अकस्मात् व्याधि के आक्रमण के समान आक्रमण करती है, जान पड़ता है कि बीच-बीच में इस आक्रमण से मुक्ति इस जन्म में नहीं मिलेगी। किन्तु आज जैसे वह आक्रमण अत्यन्त तीव्र है, अकस्मात् उस आग के जलने के समान ही जल उठी। फूस की आग तो बुझ गयी, किन्तु यह नहीं बुझी।

(ग)

उसके कन्धे पर एक भारी हाथ आ पड़ा। उसमें प्रगाढ़ स्नेह का आभास था, किन्तु हाथ अत्यन्त शीतल। स्वामी रबर की चट्टी पहन कर सतरंजी परसे आये, जो थोड़ा-सा शब्द हुआ, किन्तु चिन्ता-मग्नता से उसे सुरमा सुन न पायी।

—अकारण अपने को पीड़ा न पहुँचाओ। धीरे मृदु स्वर से ज्ञानेन्द्र-नाथ ने कहा—दूसरों के दुःख के लिये जो रोता है, वह महान है; किन्तु अकारण अपराध के दोष से अपने को दोषी मान पीड़ित करने का नाम दुर्बलता है। दुर्बलता को प्रश्रय न दो। आओ।

सुरमा ने मुड़ कर देखा। स्वामी के मुख की ओर देखते ही दोनों आँखों में जल भर कर लुढ़कने लगे। ज्ञानेन्द्र बाबू ने उसको धीरे से

अपने पास खींचकर उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए धीमे गाढ़ गम्भीर स्वर में कहा—मैं कहता हूँ, तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है। मेरा भी नहीं है। नहीं है। सब अपराध उसी का है। हाँ, उसी का है। वी डिड नथिंग इम्मारेल, नथिंग इललिगल (हमने कुछ अनैतिक, कुछ अवैधानिक नहीं किया)। तुम्हारे साथ मित्रता का अधिकार मुझे था। उस अधिकार की सीमा किसी दिन अनुचित रूप से हमने अतिक्रमण नहीं किया। विवाह हो जाने से ही दूसरी किसी नारी के साथ पुरुष का या किसी पुरुष के साथ विवाहिता नारी की मित्रता या प्रीति भाजनता का अधिकार चला नहीं जाता। मेरा भी नहीं गया, तुम्हारा भी नहीं गया।

सुरमा के नेत्रों से आँसू की कई बूँदें गिर पड़ीं। वह ज्ञानेन्द्र बाबू के बायें हाथ पर गिरीं। उस समय अपने बायें हाथ से वे सुरमा का एक हाथ पकड़े हुए थे। ज्ञानेन्द्र नाथ बोले—तुम रो रही हो? ना, रोओ मत। तुम मेरा विश्वास करो। मैंने बहुत विचारा है। समस्त न्याय और नीतिशास्त्र को छान-छान कर विचार किया है। मैं कहता हूँ कि अन्याय नहीं है। अन्याय नहीं हुआ है। केवल मित्रता नहीं सुरमा, प्रेम, विवाह द्वारा बनायी हुई नहर में से होकर नहीं बहता। विवाह हो जाने पर ही प्रेम नहीं होता, सुरमा। विवाह का दायित्व केवल कर्तव्य का, शपथ-पालन का है। सुमति से विवाह हो जाने पर भी तुमसे मैं जिस नियम से प्रेम कर रहा था, वह नियम है अमोघ, प्रकृति का अत्यन्त विचित्र नियम। उसपर किसी न्याय या नीतिशास्त्र का अधिकार नहीं। जो अधिकार है, उसका मैं अक्षर-अक्षर पालन करता था। प्रकृति के अमोघ नियम के कारण आया था प्रेम, उसको मैंने संयम के बाँध से बाँध रखा

था। प्रकट नहीं करता था। तुमसे नहीं, सुमति से नहीं, किसी से भी नहीं; और तुम्हारी बात ? तुम्हारा फैसला तो और भी सरल है। तुम कुमारी थी। अन्य के साथ तुम्हारे शरीर और मन का तनिक भी बन्धन नहीं था। केवल सुमति के स्वामी होने से मुझे छीन लेने का अधिकार तुम्हें नहीं था, किन्तु प्रेम करने का अबाध अधिकार लाख बार था। सुरमा, आज भी मैं दृढ़ विश्वास से भगवान को नहीं मानता, नहीं तो कहता कि भगवान को भी नहीं था। हमारा कुछ अपराध नहीं है। न्यायालय में कहो या किसी देश के मनुष्यों के न्यायालय में कहो, वहाँ का निर्णय—निर्दोष ! जड़ताहीन स्पष्ट कण्ठ से उच्चारण किया हुआ निर्णय ! दुर्बलता ही एक मात्र अपराध है। इसी के लिये प्राण आत्मा को अभिशाप देता है।

स्थिर दृष्टि से स्वामी के मुख की ओर देखते हुए सुरमा अभिभूत के समान बातें सुनती रहीं, ज्ञानेन्द्रनाथ की दृष्टि स्थिर थी ! वे देख रहे थे थोड़ा मुँह उठा कर घर के कोने की छत के एक भाग की ओर। जैसे वहीं उसी धुँधलेपन में दीवार पर किसी महाशास्त्र का एक पन्ना लिखा हुआ है, और वे उसे पढ़ते जा रहे हैं धीमे दृढ़ कण्ठ से।

—चलो, बाहर चलो, टहलने चलूँगा।

सुरमा यह जानती थीं। अब वे बाहर चलने के लिये कहेंगे। जाँयगे। बहुत दूर तक घूमेंगे। पहले सारी रात घूमते थे, क्लब जाते थे, मद्यपान करते थे। रात में प्रकाश जलाकर दोनों टेनिस खेलते थे। अब ऐसे ही सुमति की याद कम आती है। इस बार शायद दो वर्ष के बाद स्मरण हो आया है। सीधी राह तो वे सुमति को आने नहीं देते। जब वह बातों

के रास्ते आकर उनके सामने खड़ी होने की चेष्टा करती है तो वे बातों का मोड़ घुमा देते हैं। दूसरी बातें करने लगते हैं। आज बहुत दिनों के बाद रास्ता घुमा कर सामने आयी है। स्नानघर की खिड़की से उस आग की छटा में मिलकर बिना शरीरवाली वह ईर्ष्यालुरा आकर उन दोनों के बीच खड़ी हो गयी है।

(घ)

गाड़ी चली। श्रावण की रात में मेघ और घना हो गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अस्फाल्ट की नयी समतल सरल सड़क। यह नया मार्ग शहर पार कर नदी के ऊपर नये बैरेज के साथ तैयार किये हुए पुल पर होकर शाल के जंगल के बीच से चला गया है। दोनों ओर शाल के वन वर्षा की वायु से मतवालापन छाया हुआ है। प्रत्येक नये पत्ते पर पानी बरसने के आघात से झर-झर शब्द हो रहा है। बीच-बीच में कहीं-कहीं रास्ते के आस-पास केवड़े की झाड़ी! वहाँ केवड़े के फूल खिले हुए हैं, जिनसे सुगन्ध निकल रही है। भीगी हुई अस्फाल्ट की सड़क पर हेड लाइट के तीव्र प्रकाश का प्रतिबिम्ब फैल रहा है। रास्ते के मोड़ों पर हेडलाइट का प्रकाश जंगल के शाल वृक्षों पर पड़ रहा है, जो बहुत सुन्दर लगता है।

गाड़ी चल रही है। एक समय जैसे प्रकृति का रूप बदल गया। अन्धकार जैसे गाढ़तर हो गया। जान पड़ता है कि चारों ओर आकाश में घने काले मेघ पुञ्ज-पुञ्ज होकर पृथ्वी पर उतर आये हैं। मेघ नहीं, ये पहाड़। यहाँ से आरण्य भूमि और पार्वत्य भूमि एक हो गयी है।

अस्फाल्ट की सड़क यहाँ चक्करदार हो गयी है, वास्तव से वह साँप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी जा रही है। दूर पर कहीं से एक प्रबल झर-झर का शब्द आ रहा है। लगातार शब्द। जैसे दिग्मंडल में व्याप्त होकर उल्लास का बाजा कहीं पर लगातार बज रहा है। यह बाजा नहीं है, पहाड़ से झरना झर रहा है। गाड़ी में स्वामी-स्त्री दोनों शान्त होकर बैठे हैं। घोषाल साहब अपने हाथ में सुरमा का एक हाथ लेकर बैठे हैं। बीच-बीच में दो-चार बातें हो जाती हैं, कटी और असम्बन्धित।

यह वन तो वह नहीं है जहाँ पलास के फूलों के पेड़ देखे थे ?

—यहीं तो बाँयीं ओर, छोड़ आये।

इसके बाद फिर दोनों चुप थे। पलास के फूलों का सोने जैसा रंग। फूल तोड़ कर सुरमा को दिया। सुरमा ने एक फूल वेणी में पहना। घोषाल साहब के हाथ की मुट्ठी क्रमशः दृढ़ हो उठी। अन्तर का आवेग गाढ़ा हो गया। सुरमा एक अस्फुट कातर शब्द कर उठी। ओह !

—क्या हुआ ? स्वामी ने विस्मय के साथ पूछा।

मृदुस्वर से सुरमा बोली—अंगूठी।

कष्ट हुआ ? हँस कर कहते ही घोषाल साहब ने हाथ छोड़ दिया। उँगली में अंगूठी रहने से हाथ दबाने पर बड़ा कष्ट होता है।

—नहीं। अन्धकार में ही थोड़ा मुँह फेर कर स्वामी की ओर देखते हुए उनका हाथ अपने हाथ में खींच लिया। ना, वे छोड़ना नहीं चाहतीं।

फिर दोनों मौन। मनमें जमा हुआ जो अन्धकार कटता जा रहा है, वही जैसे बाहर फैल रहा है और प्रतिक्षण वे प्रशान्त क्लान्त में भर कर उसी को देख रहे हैं। अकस्मात् दूर के निरन्तर बाजे के समान झरने का

वही झर-झर शब्द प्रबल उल्लास से बज उठा। जैसे एक घेरा हट जाने पर, एक बन्द सिंहद्वार खुल गया। एक चढ़ाई पार कर ढाल की ओर फिरते ही वह शब्द सैकड़ों धारे में बजने लगा। सुरमा चौंक पड़ीं।

—किसका शब्द है?

—झरने का। वर्षा का जल गिर रहा है। निर्झर का स्वप्न भंग हो रहा है। घोषाल साहब के मुँह पर स्वप्नातुर हँसी छा गयी। सुरमा ने उत्सुकता के साथ खिड़की के शीशे पर मुख रखा। शायद दिखाई दे!

घोषाल साहब ने नेत्र बन्द कर आवृत्ति की—

"शिखर से शिखर पर जाऊँगा
भूधर से भूधर पर लौटूँगा
हँस खिल-खिल, गाकर कलकल, ताल-ताल पर दूँगा ताल।"

वे कई सेकण्ड मौन रहने के बाद फिर बोले—"इतनी कथायें हैं, इतने गाने हैं, और इतने प्राण हैं मेरे।" इसके बाद बोले—प्राण गाना गा रहा है। जीवन शक्ति है। जहाँ जीवन जितना ही दुर्वार होता है, वहाँ गाना उतना ही ऊँचा होता है। किन्तु सब प्राणों में विश्वग्रासी कामना रहती है। इसलिये उसकी मांगें हैं—"नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्।" अत्यन्त विशाल प्राण का जो दावा है, अत्यन्त अल्प का भी वही दावा है। बड़ा ही अज्ञान है। बड़ा ही अज्ञान।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले—किन्तु जिसमें जितनी शक्ति है, उससे एक कण भी अधिक गाने का उसे अधिकार नहीं है। प्रकृति का यही न्याय है। कहीं नदी पहाड़ तोड़-फोड़ कर चूर-चूर कर अपने रास्ते पर भागी चली जाती है, कहीं शान्त होकर थोड़े जल की सृष्टि कर पहाड़ के नीचे

पड़ जाती है। सूख जाती है। बहुत अधिक तो मानसरोवर। किन्तु सिर के लहरों में विराम नहीं।

अकस्मात् सुरमा देवी चैतन्य हो गयीं, उन्होंने कहा—कितने बजे?

वे शंकित हो उठे। जब घोषाल साहब दर्शन तत्व में प्रवेश करते हैं, तो उसका अन्त नहीं पाते। जान पड़ेगा, इसी झरने को ठीक उल्टी गति से वे पहाड़ के ऊँचे से ऊँचे शिखरों पर चढ़ते जा रहे हैं, और वे समतल पर असहाय के समान उनकी ओर देख रही है। क्रमशः जैसे जाना हुआ मनुष्य अनजान होता जा रहा है। प्राण व्याकुल हो गया। यह बात चलने पर भौंहें सिकोड़ कर उससे कहते—तो इन्स्युरेंस पालिसी, गवर्नमेण्ट पेपर और शेयर स्क्रिप्टों को ले आओ। उसी के सम्बन्ध में बातें करूँ। अथवा आलमारी खोल कर ह्विस्की का बोतल निकाल दो। मुझे पीने दो। नीचे उतरने में बहुत देर नहीं लगेगी। उससे भी स्खलित चरण से लुढ़कते हुए तुम्हारे पास आकर गिर पड़ूँगा। तुम्हारे शरीर से धक्का खाकर शून्य दृष्टि से देखता हुआ खड़ा रहूँगा। कह कर वह हा-हा, हिं-हिं करके हँसते। सुरमा वह हँसी सहन न कर पाती।

आगे घोषाल साहब वस्तुतः ऐसी बात के बाद शराब पीते, परिमाण, परिमाप का ध्यान न रखते, किन्तु अब शराब नहीं पीते। बहुत दिनों का अभ्यास एक दिन में महात्माजी के मृत्यु-दिवस की सन्ध्या को छोड़ दिया था। सुरमा-परिवार के सम्पर्क में आकर ज्ञानेन्द्रनाथ ने शराब पीने की आदत सीखी थी। टेनिस खेलने के बाद क्लब में शुरू हुआ था। वह सुमति के साथ अशान्ति में बढ़ गया था। सुमति के मरने के पश्चात् सुरमा से विवाह करने के बाद बीच-बीच में अशान्ति अवस्था उपस्थित

हो जाने पर उस दिन अधिक शराब पीते। गान्धीजी की मृत्यु के बाद समस्त रात-दिन वे एक घर में मौन होकर बैठे रहे। जीवन में गान्धीजी के सम्बन्ध में जो कुछ विचार किया था, डायरी में उसको उलट-उलट कर देखने के बाद उसके आस-पास लाल पेन्सिल से लिखा—भूल, भूल। सुरमा उनके सामने कई बार जाकर भी बात न कर सकने पर फिर आयी थी। इसके बाद, उस समय सम्भवतः रात के नौ बजे घर से निकले। बेहरा को पुकार कर कहा—सेलर में जितनी बोतले हैं ले आओ।

बोतलों को खोलकर शराब जमीन पर गिरा दी। इसके बाद बोले—सुरमा, मेरे भोजन में आज से मांस-मछली न रहे।

सुरमा को आश्चर्य नहीं हुआ। इस विचित्र मनुष्य के किसी व्यवहार से उन्हें विस्मय नहीं होता।

उसी समय से ये दूसरे मनुष्य हो गये। अब वे नये मनुष्य हैं। मनुष्य अवश्य बदलता है, प्रतिदिन, प्रतिक्षण बदलता रहता है। प्रकृति का नियम, परिवर्तन, अनिवार्य है। किन्तु यह परिवर्तन दिग-परिवर्तन जैसा है। एकबार नहीं, दो बार। प्रथम परिवर्तन हुआ सुमति की मृत्यु के पश्चात्। शान्त मृदुभाषी कौतुकपरायण ज्ञानेन्द्रनाथ सुमति की मृत्यु के पश्चात् हो उठे अग्निशिखा के समान दीप्त और प्रखर। बातचीत में धारादार और वक्र। दुनिया का सब कुछ हा-हा हँसकर उड़ा देते।

एक बार, जब ज्ञानेन्द्रनाथ वर्दवान में डिस्ट्रिक्ट जज थे, तबउनके घर पर एकत्र हुई राज कर्मचारियों की नवग्रहमण्डली। उससे भी बड़ा कारण था कि वे सपरिवार आये थे। ईश्वर को लेकर तर्क छिड़ गया। तर्क में ज्ञानेन्द्रनाथ ने अधिक बातें नहीं की, किन्तु जो दो-चार बातें की, वे जितनी

हीं मारात्मक थीं उतनी ही तीक्ष्ण, वक्र और व्यंगात्म भी थीं। मिर्चे के फोरन के समान तीखा और जोरदार। अकस्मात् इसी बीच डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट का बारहवर्षीय पुत्र बोल उठा था—गाड इज नथिंग बट बाद-रेशन (ईश्वर परेशानी के अतिरिक्त कुछ नहीं है)।

इस बात में लड़कपन था। सुनकर सब हँस पड़े थे, किन्तु ज्ञानेन्द्र ने कैसा अट्टहास किया! तीन दिन तक हँसते रहे।

धीरे-धीरे आयु के साथ हँसी कम हो गयी। किन्तु उनका स्वभाव न बदला। प्रथम जैसे स्तब्ध हो गये युद्ध के समय। इसके बाद गान्धीजी की मृत्यु के बाद चौबीस घण्टे में दूसरे मनुष्य हो गये। अब दर्शन तत्व के जंगल में प्रवेश-पथ पर उन्हें पीछे बुलाने से वे पहले की तरह समान अट्टहास नहीं करते, शराब नहीं पीते, नेत्र बन्द कर चुपचाप बैठे रहते हैं, और उसी अवस्था में कभी-कभी उन्हें नींद आ जाती है। ऐसी अवस्था में उनको स्वाभाविक जीवन के समतल पर लाने के लिये सुरमा ने एक कौशल निकला था। उनको किसी महान् दायित्व अथवा कर्तव्य का स्मरण कहा देतीं। उसी से काम चल जाता।

(ङ)

आज उस नदी के वेग और उस पहाड़ी बाँध की दृढ़ता की बातों से जब वे क्रमश: जीवन-तत्व के वन में सुरमा के अधिकार के बाहर चले जाने का उपक्रम कर रहे थे, तो सुरमा ने चकित होकर अपनी हाथघड़ी की ओर देखा। जान पड़ता है बिजली की चमक देख कर अपने आप आँखें बन्द करने जैसा उनका ताकना था, बोलीं—कितना

बज रहा है ? अपनी घड़ी में नहीं जान पा रही हूँ। नेत्र का पावर खूब बढ़ गया है। देखो तो ?

ज्ञानेन्द्रनाथ आँखें बन्द कर गाड़ी की गद्दी पर सिर रख कर मृदु स्वर में बोले—गाड़ी के डैसबोर्ड की घड़ी देखो।

डैसबोर्ड की घड़ी एक बहुत बड़ी टाइम पीस थी। उस पर रैडियम लगा हुआ है। चमक रही है।

सुरमा ने चौंक कर कहा—ओ माँ! यह तो बारह बज गया!

—बारह बजा ? क्लान्त स्वर से ज्ञानेन्द्रनाथ ने उच्चारण किया। किन्तु इससे अधिक चंचलता प्रकट नहीं की! आँखें बन्द कर सोचते रहे, आँखें नहीं खोलीं।

—गाड़ी घुमाओ। सुरमा ने कहा।

—घुमा दूँ ?

—घुमाओगे नहीं ? लौटने पर फिर फाइल लेकर बैठोगे। उधर सेशन चल रहा है, उसी दस बजे—

तो भी ज्ञानेन्द्रनाथ उसी प्रकार बैठे रहे।

पूरा केस दिमाग में, उद्घाटित-यवनिका पर रंगमंच के दृश्यपट के समान प्रवाहित होने लगा।

जटिल विचार्य घटना है। नाव उलट गयी थी। नाव डूबी थी छोटे भाई के दोष से। वे जल में डूब गये। छोटे भाई ने जकड़ रखा बड़े भाई को। बड़े भाई ने छुड़ाने की चेष्टा की, पर छुड़ा न सका। अन्त में छोटे भाई के गले पर उसका हाथ पड़ा। और यह स्वीकार उसने किया है।

उनके मन में अभियुक्त का ध्यान आया।

सुरमा भी मौन होकर बैठी रही। ज्ञानेन्द्रनाथ स्तब्ध ही रहे, किन्तु अब डूब गये मामले के विचार में। सुरमा इसे जान गयी। ज्ञानेन्द्रनाथ के सिर में चिन्ता की रेखा फूट उठी। यह तो भी सहन होता है। सहन करने को छोड़ और कोई उपाय नहीं। यही कर्तव्य है। किन्तु यह क्या हुआ उनके जीवन में? उन्होंने नहीं पाया। उनके साथ चल नहीं पायी? ना—! हार गयी! टप-टप कर आँखों से आँसू गिरने लगे। किन्तु यह ज्ञानेन्द्रनाथ नहीं जान पाये, अँधेरी गाड़ी में वे आँखें बन्द कर बैठे रहे। मन की आँखों के सामने अदालत, जूरी, सरकारी वकील, अभियुक्त नाच रहे हैं।

चार

(क)

दूसरे दिन। कटघरे में अभियुक्त उसी ढंग से खड़ा था। यद्यपि आयु का अनुमान नहीं किया जा सकता, किन्तु पूर्ण यौवन के सबल स्वास्थ्य के चिह्न उसके सारे शरीर पर थे। उसका शरीर केवल आहार से ही पुष्ट नहीं था, वरन् उपयुक्त आहार और परिश्रम से उसके देह की समस्त पेशियाँ सुगठित हो गयी थीं। तीक्ष्ण दृष्टि से देखने से जान पड़ता है कि वह शरीर के साधन की सम्पन्नता, और दृढ़ संकल्प से परिश्रम का अभ्यास लेकर जन्मा है। सिर थोड़ा छोटा। तांबे जैसा रंग। मुँह को देख कर मुँह का असली गठन नहीं जाना जाता। बहुत दिनों

तक विचाराधीन रहने से सिर के केश बढ़ गये हैं, मुख पर दाढ़ी-मूछें बढ़ गयी हैं। अवश्य ही, पहले के समान केशों में रूक्षता नहीं है, आजकल जेलखानों में रहनेवालों को तेल मिलता है। फिर भी दाढ़ी, मूंछ, केश सब विच्छृंखल हैं। इस अभागे के विभ्रान्त मन का आभास जैसे फूट रहा है। भीतर में आग छिपी हुई है जमीन के ऊपर की रूक्षता के समान। नाक चौड़ा, दोनों नेत्र बड़े, दृष्टि जैसे उग्र। ज्ञानेन्द्रनाथ ठीक समझ नहीं पा रहे थे कि वह उद्धत है या निष्ठुर। पहनावे में सफेद मोटे कपड़े की झूल, गले में तुलसी की माला, सिर में तिलक।

(ख)

माननीय जजसाहब, इस अभियुक्त नगेनके बाल्य-जीवन की प्रकृति और प्रवृत्ति का वर्णन मैंने किया है। उपर्युक्त साक्षी-प्रमाणों द्वारा वह सत्यता पर प्रतिष्ठित है। इसके बाद यह नगेन गृहत्याग कर चला गया। अनुतापवश हो या क्षोभ और अभिमानवश हो, वह लापता हो गया और लम्बे अरसे बाद संन्यासी के वेश में लौट आया।

सरकारी वकील अविनाश बाबू कल के वक्तव्य का सूत्र पकड़ कर अग्रसर हुए। हाथ का चश्मा आँखों पर लगाया और कागज-पत्रों में से एक कागज निकाल कर फिर उन्होंने कहना आरम्भ किया—

माननीय, मेरा वक्तव्य सुनने के पूर्व आपसे फिर एक बार शवच्छेद की रिपोर्ट पर दृष्टिपात करने का अनुरोध करता हूं।

अविनाश बाबू ने जूरियों की ओर देख कर कहा—रिपोर्ट में लिखा है कि पानी में डूब कर मरने से मनुष्य की पाकस्थली में जिस परिमाण में

जल पाया जाता है, इस मृतक की पाकस्थली में जल पाये जाने पर भी, उसका परिमाण उससे आश्चर्यजनक रूप से कम था अर्थात् ऐसी दशा में पानी में डूबने से साँस रुक जाने के कारण मृत्यु नहीं हुई है। किन्तु मृत्यु साँस रुक जाने से ही हुई है और लाश पर भी इसके लक्षण स्पष्ट पाये जाते हैं। ऐसी अवस्था में अभागा मरा किस प्रकार ? उसका प्रमाण मृतक की कण्ठनाली में स्पष्ट पाँच नखों के चिह्नों के बीच छिपा हुआ है। बाँयी ओर एक, दाहिनी ओर चार मनुष्य के हाथ के चिह्न हैं। अभियुक्त नगेन ने थाने और नीची अदालत में स्वीकार किया है कि डूबी हुई अवस्था में खगेन ने उसको इस प्रकार पकड़ लिया था कि वह भी डूबा जा रहा था, साँस बन्द होने से उसकी छाती फटी जा रही थी। वह उसके हाथ से उद्धार पाने के लिये प्राणपण से चेष्टा कर रहा था। इसी अवस्था में किसी प्रकार वह अपना दाहिना हाथ छुड़ा लेने में सफल हुआ और वही हाथ खगेन की कण्ठनाली पर पड़ा। उसने कण्ठनाली दबायी। खगेन ने छोड़ दिया या समस्त शरीर के साथ उसका हाथ भी शिथिल होकर अलग हो गया। उस समय वह बहने लगा। वह यह बात अस्वीकार नहीं करता। हम दो निश्चयों पर पहुँच सकते हैं। एक, कण्ठनाली दबाकर पकड़ने के कारण खगेन की मृत्यु होने से उसने छोड़ दिया या लुढ़क गया अथवा मरने से कुछ पहले मृतक के समान अचेतन अवस्था में वह लुढ़क पड़ा। सिद्धान्त कुछ भी क्यों न हो, मृत्यु इसी कारण इसी अभियुक्त द्वारा हुई है।

इस निर्णय पर पहुंचने के बाद भी दो बातों पर विचार करना है। वे जटिल, अत्यन्त जटिल हैं। दोनों विषयों में एक है, अभियुक्त ने आत्म-रक्षा के लिये अर्थात् मृत्यु-यंत्रणा के समय मानविक सम्पूर्ण चैतन्य और

चेतना खोकर, अवशिष्ट पाशविक चेतना की अत्यन्त स्वाभाविक प्रेरणा से मृत खगेन का गला दबा कर पकड़ा था, अथवा इसके पूर्व ही उसकी मानसिक कूटबुद्धि, लोभ-हिंसा से उत्पन्न क्रूरता और जीवन भर अभ्यस्त पापपरायणता इस अवसर पर चकित होकर जाग उठी थी। जिस प्रकार जाग उठती है निर्जन में असहाय नारी देख कर व्यभिचारी की पशु-प्रवृत्ति और जाग उठती है लूटने की लुण्ठन-प्रवृत्ति। उसी प्रकार स्थान, काल और पात्र के समावेश से उत्पन्न स्वर्ण सुयोग के समान सुन्दर अवसर मिल गया था। माननीय, सत् और असत् के द्वन्द्व में इस संसार में कितनी दशाओं में भाई अपने विश्वासपरायण भाई की हत्या करता है, इसकी संख्या बहुत है, गुप्त प्रवृत्ति अवसर पाकर दानव की तरह जाग पड़ती है। चिरन्तन पशु जाग उठता है, असहाय मनुष्य देखकर बाघ जिस प्रकार गुप्त स्थान से झपट पड़ता है, ठीक उसी प्रकार वह भी झपट पड़ा।

गोपन मनकी पशु-प्रवृत्ति का अस्तित्व ही मनुष्य की सभ्यता की शृंखला का सबसे बड़ा शत्रु है, वह नाना प्रकार के छद्मवेश धारण कर अनेक प्रकार की छलनाओं से सर्वनाश करता है। मैंने साक्षी-प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर दिया है, ऐसा विश्वास कर कहता हूँ कि अभियुक्त के मन में वही प्रवृत्ति जाग्रत हो गयी थी। इस समय विचार का विषय यही है, उस जलमग्न अवस्था में अभियुक्त के मन के स्वरूप का निर्णय। यह निर्णय अत्यन्त कठिन, अत्यन्त जटिल है; इसका कोई साक्षी नहीं है।

अभियुक्त का कथन है कि वह नहीं जानता, और यह भी कहता है कि यदि उसने हत्या की हो, तो मृत्युदण्ड ही चाहता है। अभियुक्त वैष्णव है, इस विचाराधीन अवस्था में भी उसको तिलक लगाये देखता हूँ। उसने

एक समय गृहत्याग किया था। वैरागवश, जीवहत्या कर कुल धर्म के न मानने के अनुतापवश। और बारह वर्ष बाद आकर इस सौतेले भाई को अत्यन्त स्नेहपूर्वक छाती से लगा लिया। उस भाई को उसने बीस वर्ष का युवक कर दिया। इस विचार से देखने से हमें ऐसा लगेगा और हम इसी सिद्धान्त पर पहुँचेंगे कि अभियुक्त ने जब भाई का गला दबा रखा था, उस समय उसमें मौलिक जीवन की आत्मरक्षा की पशु-चेतना के अतिरिक्त मानविक ज्ञान और चैतन्य पूर्णतः लुप्त हो गया था। उस अवस्था में जो अपराध उसने किया है, वह अत्यन्त छोटा है, यहाँ तक कि उसे निरपराध भी कहा जा सकता है।

न्यायाधीश ज्ञानेन्द्रनाथ ने फिर अभियुक्त की ओर देखा। वह मिट्टी के पुतले के समान खड़ा है। ठीक उन्हींके समान भाव-शून्य मुँह है। वे जानते हैं कि ऐसे समय उनके मुख की एक रेखा में भी परिवर्तन नहीं होता, निरासक्त के समान सुने जाते हैं। एक अन्तर रह गया है। अभियुक्त की दृष्टि में विस्मय का आभास मिलता है, विश्लेषण के ढंग ने उसे आश्चर्य में डाल दिया है। विह्वलता में भी इस विस्मय ने उसे सचेत कर रखा है।

अविनाश बाबू ने कहा—किन्तु यदि इस व्यक्ति ने आकस्मिक सुयोग पाकर लोभ और हिंसा के वशीभूत होकर अपने हाथ से पालन-पोषण किये हुए भाई की हत्या की हो तो नृशंसतम व्यक्ति और अत्यन्त चतुर नृशंस व्यक्ति है। और मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह वही है। सरसरी दृष्टि से यह बात असम्भव जान पड़ेगी। ऐसा लगेगा और लगना उचित भी है कि जो व्यक्ति बकरी के मारने के दुःख और लज्जा से संन्यासी हो गया

था, जिसने छाती से लगा कर भाई का लालन-पालन किया, जिसके सिर में तिलक, गले में कण्ठी है, जो व्यक्ति अंचल में एक प्रसिद्ध वैष्णव है, क्या वह ऐसा कर सकता है ? किन्तु कर सकता है। मैं कहता हूँ कर सकता है। इस सम्बन्ध में मेरा दो निवेदन है। प्रथम मनुष्य का बाल्यकाल का अभ्यास, उसकी जन्मगत प्रकृति में स्थायी अधिकार कर लेता है। वह मरता नहीं, दबा रहता है। और मानव-जीवन घटनाओं के घात-प्रतिघात से निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। नित्य निरन्तर परिवर्तनों में ही उसका जीवन प्रकाशित होता है और प्रकाशित होने में भी विप्लवात्मक परिवर्तन कभी-कभी हो सकता है। जिस पथ पर चलता है, अकस्मात् उससे विपरीत मार्ग पर चलने लगता है। माननीय, गृहधर्म मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। हठात् देखा जाता है कि एक मनुष्य संन्यासी हो गया और फिर देखा जाता है कि वही संन्यासी गेरुआ छोड़ कर फिर गृहधर्म करने लगता है। वह धन-सम्पत्ति को लेकर साधारण सांसारिक मनुष्यों से सौगुनी आसक्ति और कुटिलता से मामला-मुकदमा करता है। जो मनुष्य पत्नी-वियोग में विरह का महाकाव्य लिखता है, वही मनुष्य कई वर्ष बाद नया विवाह कर नवीन प्रेम की कविता लिखता है।

(ग)

ज्ञानेन्द्र बाबू ने कहा—संक्षेप कीजिये अविनाश बाबू। कृपया संक्षेप कीजिये।

—अच्छा, माननीय, मैं अब थोड़ा ही कहूँगा। वह यह है। इस अभियुक्त नगेन में एक और परिवर्तन हुआ। हम उसका परिचय या

प्रमाण पाते हैं। इस घटना के समय उसने छोटे भाई से अलग होने की व्यवस्था की थी। किन्तु बाहरी, भीतर था अन्तर्द्वन्द्व।

—क्या ? भौंह टेढ़ी कर विचारपति सचेत हो उठे।

—उसी सनातनत्रयी का विरोध, माननीय।

—दो नारियाँ, एक पुरुष ?

—इसमें थे दो पुरुष, एक नारी, मान्यवर।

—अच्छा।

अविनाश बाबू बोले—नारी थी लीलामयी।

—लीलामयी ? आपका अभिप्राय इस आधुनिक युवती से है ?

नहीं, माननीन, स्त्री लास्यमयी है, इससे भी अधिक व्यभिचारिणी, कुलटा है। वह उसी ग्राम के एक मजदूर की कन्या है। नगेन और खगेन के बाप के समय से ही इस युवती के बाप-माँ से काम के लिये सम्बन्ध था। खेती के समय इसके माँ-बाप उसके खेतों में काम करते थे। अन्त में जब नगेन और खगेन के बाप अस्वस्थ होकर बहुत दिनों तक रोग शय्या पर पड़ गये तो उन्होंने स्थायीरूप से खेती का काम किया। उनके घर युवती की माता का रोज आना-जाना होता, घर में झाड़ू देने का काम करती, उनके घर धान पकाने का काम नियमित रूप से करती, वेतन पर नौकरानी का काम करती। उसी समय से यह युवती-चम्पा भी नित्य माँ के साथ उनके घर दोनों समय जाया करती। और आयु में वह खगेन की समवयस्का थी, दो-एक वर्ष बड़ी। खगेन के साथ खेलती थी। इसके बाद चम्पाका विवाह हुआ, वह ससुराल चली गयी। उस समय वह बालिका थी। हमारे देश की नीची जातिवालों में सात-आठ

वर्ष की आयु में विवाह की प्रथा सर्व विदित है। इसके पश्चात् इस घटना के दो वर्ष पूर्व जब वह विधवा होकर लौट आयी, तो वह युवती और स्वभाव से पूर्णतः व्यभिचारिणी हो गयी थी। वह अपनी ससुराल में व्यभिचारिणी हो गयी और जहाँ तक ज्ञात है, जन्म से ही इसी प्रकृति की थी। कारण, ससुराल में रहते समय ही इस स्वभाव के कारण उसका वहुत अपवाद हुआ। दो-एक घटनायें अदालत तक पहुँच गयीं। उसी चम्पा ने लौटने के बाद स्वाभाविक भाव से ही अति सरलता के साथ अपने बचपन के खेल के साथी प्रियदर्शन तरुण खगेन को आकर्षित कर लिया। इसके बाद आकृष्ट हुआ बड़ा भाई। यही चम्पा युवती मुकदमे की प्रधान साक्षी है। अभियुक्त नगेन पहले-पहल इस तरुण-तरुणी के बीच सुधारक के रूप में आया। भाई को चम्पा के मोह से छुड़ाने की चेष्टा की और युवती से भी अलग हट जाने का अनुरोध किया था।

हँस कर अविनाश बाबू बोले—उस समय वह साधु जनोचित अनेक धर्मोपदेश दिया करता था। इसके बाद—

फिर अविनाश बाबू हँसे। उन्होंने कहा—साधुका आवरण उसके जीवन से खिसककर गिर पड़ा। वह उसकी ओर आकृष्ट हुआ और उन्मत्त हो गया। उसने चम्पा से विवाह का प्रस्ताव भी किया था। कुछ समय के लिये चम्पा भी उसके प्रति आकृष्ट हुई। छोटा भाई मृत खगेनने उस समय बड़े भाईको घरसे निकल जाने को कहा। क्योंकि संन्यासी हो कर जब बड़े भाई ने गृह त्याग किया था और बाप की मृत्यु शय्या के सामने अपने मुख से कहा था कि वह गृहधर्म नहीं अपनायेगा और छोटे भाई का पालन-पोषण करने के बाद ही वह फिर चला जायगा। उस समय पैतृक सम्पत्ति पर उसका

कुछ अधिकार भी नहीं रहेगा। सबका मालिक खगेन अकेला होगा। किन्तु अभियुक्त नगेन ने उस समय वह बात अस्वीकार की। कहा, मुख की बात का मूल्य क्या? उसने कभी ऐसा कहा था, यह स्मरण नहीं आता। उसने कहा कि तेरे लिये मुझे संसार में रहना पड़ा, अब उस संसार ने मुझे जकड़ कर पकड़ लिया है। तेरे लिये ही मुझे चम्पा के सम्पर्क में आना पड़ा। तूने ही तो मुझे चम्पा के मोह में गिरा दिया। आज मैं चम्पा को वैष्णवी बनकर माला-चन्दन कर अखाड़ा जमाऊँगा। सम्पत्ति में हिस्सा मुझे पाना ही होगा, मैं लूँगा।

विरोध की एक जटा के साथ और एक जटा मिल कर दृढ़तर और कठोरतर हो गयी। उसका परिणाम यह घटना है। सम्पत्ति सम्बन्धी विरोध में गाँव के पंचों ने निश्चय किया कि नगेन ने बाप से मौखिक जो कुछ भी कहा हो, किन्तु जब कुछ लिखा-पढ़ी नहीं हुई है और बाप ने स्वयं यह बात नहीं कही है और विल नहीं कर गया है कि उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी खगेन अकेला ही होगा, ऐसी अवस्था में नगेन को सम्पत्ति में हिस्सा अवश्य मिलेगा। प्रायः सम्पूर्ण भूमि बँट गयी। बाकी रहा एक खेत। पंचों ने कहा कि नाप कर खेत के बीच में दोनों मेड़ डाल लें। उसी खेत को नाप कर बाँटने के लिये घटना के दिन दोनों भाई नदी के उस पार गये। यहाँ एक बात और कहने की आवश्यकता है। एक मित्र के साथ खगेन ने एक पान-बीड़ी की दुकान कर ली थी।

वह उसी दुकान पर रहता था। उस दिन तय हुआ था कि नगेन आकर खगेन को पुकारेगा और दोनों भाई उस पार जायँगे। किन्तु नगेन नहीं आया, देर हो गयी। उस समय खगेन ने ही जाकर नगेन को पुकारा।

मेरा विश्वास है कि नगेन के मन में यह प्रवृत्ति झाँक रही थी। उस समय एक द्वन्द्व चल रहा था। इसी सुअवसर पर यदि काँटा निकाल दूँ तो बुरा क्या है? फिर भय-माया-ममता भी पूरी शक्ति से उसमें बाधा डाल रही थीं। स्नेह, दया आदि मानविक प्रवृत्तियाँ उस समय संकित हो रही थीं। उस नदी में भाई को अकेला पाने का अवसर आने पर ही अन्तर की गुफा में प्रतीक्षा करती हुई हिंसा हुँकार मार कर झपट पड़ेगी उसे वह समझ रहा था। इसी कारण नगेन घर से नहीं निकला। खगेन को वही बुलाने वाला था। इसका प्रमाण हमें खगेन के साझीदार मित्र द्वारा मिलता है। खगेन की दुकान के साझीदार मित्र का कथन है कि चम्पा और नगेन के व्यवहारों से खगेन उस समय क्षोभ और अभिमान से प्राय: पागल हो गया था। उसने अभिमान और क्रोध में प्रतिज्ञा की थी, कि उस गाँव में ही नहीं रहेगा। सम्पत्ति बाँट कर बेचने-खोंचने के बाद यथाशीघ्र अन्यत्र चला जायगा। दुकान का हिस्सा खगेन ने उसी दिन अपने मित्र को बेच दिया और कहा कि नदी के उस पार की जमीन के बँट जाते ही वह पहले यह गाँव छोड़ कर उस पार के गाँव में चला जायगा। वहाँ से अपनी जमीन नगेन के किसी शत्रु के हाथ बेच कर देश छोड़ कर चला जायगा। इसी कारण वह अधीर होकर नगेन का रास्ता देख रहा था। किन्तु नगेन के न आने पर चिढ़ कर उसे घर से बुला लाया। यह दुकान नदी के घाट के रास्ते पर है। खगेन का वह मित्र कहता है—उस पार जाने के लिये दुकान तक आकर भी नगेन ने कहा—खगेन, आज रहने दो! मेरा शरीर आज अच्छा नहीं है। और यह भी कहा—आज तीसरा पहर अच्छा नहीं है, वृहस्पति का दिन है।

इसके अलावा कैसा ऊखम है। हवा-टवा उठने पर तुझे लेकर संकट में पड़ जाऊँगा।

खगेन अच्छी तरह तैरना नहीं जानता था। वह जल से भय करता था। किन्तु उस दिन उसने कहा—नहीं। तुम्हारे साथ मैं और सम्बन्ध नहीं रखूँगा। उस जमीन में मेड़ डालते ही सात रस्सियों में से अन्तिम रस्सी कट जायगी। आज इसे करना ही पड़ेगा।

गहरी साँस छोड़ कर नगेन ने कहा—तो चलो।

इसमें संकेत स्पष्ट है। अपनी वर्वर-प्रवृति से वह उस समय असहाय था। गहरी साँस उसी का चिह्न है! और इसके बाद की घटना, जिसका इसके पहले मैं विशद रूप से वर्णन कर चुका हूँ, घटी। जलमग्न अवस्था का सुयोग पाकर वर्वर—प्रवृति की ताड़ना से यह नृशंस हत्याकाण्ड हुआ है।

उधर बाहर एक का घण्टा बजा। अदालत की घड़ी दो मिनट सुस्त थी।

ज्ञानेन्द्रबाबू उठ पड़े।

पाँच

(क)

इस कमरे में जाकर ज्ञानेन्द्रनाथ आरामकुर्सी पर लेट गये। शरीर आज अत्यन्त अवसन्न है। कल की रात में जागने के कारण सारा शरीर भारी हो गया है। सिर झिमझिम कर रहा है। अपने सिर पर हाथ फेर कर आँखें बन्द किये हुए वे पड़े रहे।

अर्दली टेबिल रख गया। आँखें बन्द किये हुए ही अनुमान कर लिया। आँखें बन्द किये ही बोले—केवल टोस्ट और काफी। और कुछ नहीं। सबेरे उठने के बाद ही उन्होंने अनुभव किया था। सुरमा की तीक्ष्ण दृष्टि है, उन्होंने भी लक्ष्य किया था। उन्होंने कहा था—तुम्हारा शरीर खराब है।

उन्होंने स्वीकार नहीं किया। कहा—नहीं। शरीर ठीक है। किन्तु रात में जागने की थकावट कहाँ जायगी? उसकी छाप तो पड़ेगी ही। वह तो तुम्हारे मुँह पर भी पड़ी है। वे हँस पड़े।

—इसके अतिरिक्त कल तीसरे पहर की वह आग!

—ओह! वह स्नान करते ही ठीक हो जायगी।

कहते ही उन्होंने फाइल खींच ली और जो आशा की थी, वही हुआ। सुरमा एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर चली गयी थी। फाइल खोलकर बैठने का अर्थ यही था।

कृपया सुरमा, इस समय मुझे काम करने दो।

सुमति नहीं जाती थी। किन्तु सुरमा चली जाती है। इस कार्य

की गुरुता सुरमा से अधिक कौन अनुभव करेगा? सुरमा विचारपति की कन्या, विचारपति की स्त्री और स्वयं भी शिक्षिता महिला। सुमति से अन्त में कहना पड़ता—मुझे काम करने दो! ऐसा करने से अन्त में मेरी नौकरी चली जायगी। सुमति क्रोध के मारे चली जाती।

सुमति की प्रकृति सोचने के लिये ही उन्होंने फाइल उठा ली थी। अन्यथा फाइल देखने की कुछ आवश्यकता न थी। असल में गत रात्रि का वही चिन्ता का स्रोत उनके मस्तिष्क में अवरुद्ध जल-स्रोत के समान चक्कर कर रहा था। सत्य के बाद सत्य का नया-नया प्रकाश आकर नवीन जल-स्रोत के समान आकर गतिवेग संचारित कर रहा था; किन्तु समय के अभाव से सामने की ओर नहीं बढ़ रहा था। थकावट से चूर होकर वे सो गये। नींद भी नहीं आयी। स्वप्न-विह्वल एक तन्द्रा में पड़ गये। किन्तु आश्चर्य, स्वप्न में सुमति आकर एक बार भी सामने खड़ी नहीं हुई। किन्तु सवेरे नींद खुलने पर सबसे पहले मन में सुमति का मुख सामने आ गया। आश्चर्य! अवचेतन में नहीं, सचेतन मन का द्वार खोलकर चैतन्य में आकर वह खड़ी हो जाती है। सुमति को लेकर ही कल रात की असमाप्त चिन्ता मन में जाग उठी। स्मरण आया। लाइफ फोर्स का, प्राणशक्ति का जीवन-संगीत, कल उस झरने के कल-कल में सुना था। वह झर-झर शब्द आज भी उनके कानों में बज रहा है। वह एक बिन्दु हो, अथवा अत्यन्त विशाल हो, उसकी आकांक्षा विश्व को ग्रस लेने वाली है। किन्तु जहाँ शक्ति का परिमाण जितना होता है, उसके पावने का परिमाण भी उतना ही निश्चित होता है। उससे एक कण भी अधिक नहीं।

ब्रह्मा के कमण्डल का अल्प परिमाण जल—शायद एक सेर या पाँच पाव जल—गोमुखी से समस्त आर्यावर्त में प्रवाहित होकर अपने विष्णु चरण से प्रकट होने की महिमा के गुण और भाग्य से बंगाल की खाड़ी में जाकर मिल गया। सुमति के मुख से यह बात सुन कर वे हँसते। कहते, ऐसा नहीं होता सुमति, एक कमण्डल जल गिरा कर देखो न, कितनी दूर जाता है। सुमति क्रोध करती, उनको अधार्मिक, अविश्वासी कहती।

यह बात पहले-पहल दार्जिलिङ्ग में बैठ कर हुई थी।

ज्ञानेन्द्रनाथ सुमति को हिमालय की चोटी पर बर्फ की दीवार दिखला कर भी यह बात समझा न सके। अज्ञान शक्तिका दावा ठीक सुमतिके समान विश्वग्रासी होता है। वह कभी पूर्ण नहीं होता। वेदना में वह अवश्य ही विलुप्त हो जाता है; यही प्रकृति का अटल निर्देश है। जल, आग, वायु—ये लड़ाई करके अपने को समाप्त कर स्थिर होते हैं; किन्तु जीवन चिल्ला कर रो मरता है, जानवर चिल्लाने से जाना जाता है; मनुष्य छिप-छिप कर रोता है, अभिशाप देता है। अवश्य ही प्रकृति के मौलिक धर्मको पीछे छोड़कर मनुष्य ने अपने लिये एक अपना धर्म आविष्कार कर लिया है। उसका धर्म विचित्र है। मृत्यु-यंत्रणा में भी तृषार्त मनुष्य अपने मुख के सामने के जलपात्र को अन्य तृषार्त के मुखके सामने रखकर कहता है—मेरी अपेक्षा तेरी आवश्यकता अधिक है। इस प्रकार की लाखों घटनायें घटी हैं। नित्य घटती हैं, क्षण-क्षण घट रही हैं। किन्तु इस महासत्य को कौन अस्वीकार करेगा कि जिस मरणोन्मुख तृषार्त ने अपने मुख का जल अन्य को दिया था, उसकी तृषा की यंत्रणा की सीमा नहीं थी। वहाँ प्रकृति का धर्म अमोघ है। उसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। मनुष्य के जीवन में भी वही द्वन्द्व, वही संग्राम

होता है, वहीं तो उसको निष्ठुरयंत्रणा सहन करनी पड़ती है। प्रकृति—धर्म का दिया हुआ दण्ड भोगना पड़ता है। हठात् ज्ञानेन्द्र बाबू ने आँखें खोल कर सामने की ओर देखा। देखते ही रहे।

नहीं। वह इतना ही नहीं है, और भी है। उस तृषार्त मृत्यु-यंत्रणा के साथ और कुछ भी है। जो मरणोन्मुख तृषार्त अपने मुख का जल दूसरे को देकर मरता है, उसके मुख पर एक क्षीण प्रसन्नता की रेखा जैसे वे आँखें फाड़ कर प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

पिछली रात में देखे हुए नदी के बाँध का स्मरण हो आया। बाँध की उस ओर विराट संग्रहस्थली में जल जमा होकर कलकला रहा है। देखने से स्थिर जान पड़ता है। किन्तु किसी प्रचण्ड निम्नाभिमुखी गति के वेग से वह उस गथनी को ठेल रहा है। बाँध की जमावट के अणु-अणु में उसका दबाव पहुँच गया है। वह सर्वाङ्ग में व्याप्त हो गया है।

जीवन वाङ्मय है। फिर भी जीवन को यह दबाव निश्शब्द होकर सहन करना पड़ता है। वह चिटक कर फटना चाहता है। फिर भी उसे सहन करता है।

(ख)

अर्दली ने ट्रे लाकर रख दिया।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने कहा—काफी तैयार करो! छुरी-काँटा अलग रख कर हाथ में ही टोस्ट उठा लिया। आज सबेरे से ही कुछ नहीं खाया है। भूख नहीं थी। रात में लौट कर खाते-खाते साढ़े बारह बज गये थे। इसके बाद भी एक घण्टे तक जाग कर बैठे रहे। इसी चिन्ता में मग्न थे।

चिन्ता के एक बार प्रकट होने पर उससे मुक्ति नहीं। इस देश के शास्त्र-कारों ने कहा है कि चिन्ता न बुझने वाली चिता के समान है। वह जलाया करती है। यह बड़ी सुन्दर उपमा है। तो भी उन्हें बहुत अच्छी नहीं लगती। वे चिंता नहीं कहते। प्राण ही अग्नि है, वस्तुजगत् की घटनायें उसका ईंधन हैं और चिन्ता उसकी शिखा है। चिन्ता ही तो चैतन्य को प्रकाशित करती है, चैतन्य उस शिखा की ज्वलन्त ज्योति है। वह अपने को प्रकाशित करती है और अपनी प्रभा से विश्व-रहस्य को प्रकाशित करती है। जो गुफा में बैठ कर तपस्या करते हैं, वे अपने आहार के सम्बन्ध में उदासीनता का मर्म अनुभव करते हैं। रात में जागने से क्या उनका शरीर खूब अस्वस्थ हो गया था? नहीं, ऐसा नहीं हुआ था। अवश्य थोड़ा सा अनुभव हुआ था। रात की हल्की नींद में भी यह चिन्ता उनके मनमें विचित्र दुर्बोध स्वप्न के आकार में घूम रही थी।

सबेरे से ही वह चिन्ता शान्त रह कर फिर जल उठी है। उसीमें इतने मग्न थे कि खाने की इच्छा नहीं हुई। टोस्ट खाने में अच्छा लगता है। टोस्ट उन्हें अच्छा लगता है, आज से नहीं, कालेज-जीवन से ही। पहले मुंसिफी के समय घर पर सबेरे-संध्या टोस्ट की व्यवस्था बहुत कष्ट के बाद भी नहीं कर पाते थे। सुमति किसी प्रकार भी पसन्द नहीं करती थी। वह पसन्द करती थी, पूड़ी-तरकारी, तरकारियों में आलूदम। वही उन्होंने स्वीकार कर लिया था। सुरमा ने सुमति की इस अरुचि का नाम दिया था, टोस्टोफोबिया। इस बात के लिये भी उसने सुमति को बहुत चिढ़ाया था। चाय के लिये उन दोनों का निमंत्रण देकर उनको देती टोस्ट, अण्डा, केक, चाय, सुमति को देती निमकी, कचौड़ी, मिठाई। सुमति मन ही

मन क्रोधित होती, किन्तु मुँह से कुछ कह न सकती। सुमति में अनेक संस्कार थे। जाति, धर्म में उसको प्रबल विश्वास था। इसी सूत्र से वह विश्वास करती थी कि भोजन में जिसकी रुचि विधर्मी है, मन-प्राण से वह विधर्म से प्रेम करता है। कितनी बार उसने कहा था—खाकर मनुष्य जीता है और जन्म के बाद सबसे पहले खाना ही चाहता है। यदि वही खाद्य उसे इस देश का पसन्द न होकर अन्य देश का पसन्द आता है, तो उस देश में वह अवश्य ही जायगा। जिसे अपने धर्म का भोजन पसन्द न होकर अन्य धर्म का पसन्द होता है, उस धर्म को वह अवश्य छोड़ देगा। मैं जानती हूँ कि अपना तुम्हें कुछ पसन्द नहीं है। धर्म नहीं, खाद्य नहीं, मैं नहीं। इसीलिये मैं तुम्हारी आँखों का शूल बन गयी हूँ।

सुरमा ने इतना अनुमान नहीं कर पाया। उन्होंने भी उनसे नहीं कहा। सुमति के जलाने का यह खेल खेलने के लिये बीच-बीच में सैण्डविच, कटलेट, केक, पुडिंग बनाकर अर्दली से भिजवा देती; लिखती—अपने हाथ से तैयार किया है, बहनोई साहब को पसन्द आयेगा, इसीलिये भेजती हूँ। सैण्डविच में चिकेन है, कटलेट में पतली हड्डी का टुकड़ा है, केक, पुडिंग में मुर्गी का अण्डा है। तुझे छुआछूत का रोग है, घर में देवताओं के अनेक चित्र हैं, इसीलिये बतला देती हूँ।

अर्दली के चले जाने पर सुमति क्रोध से कट पड़ती। उन्हें फेंक देती और पवित्रता की दुहाई देकर स्नान करती।

सुरमा सब खबर रखती। भेंट होने पर खिलखिला कर हँसती, कहती, कैसा था?

वे भी विवश होकर हँसते। हँसना पड़ता। अन्यथा उनका जीवन असह्य हो गया था।

(ग)

बेचारी सुरमा। इन सबको लेकर उसके मन में एक गुप्त ग्लानि एकत्र हो गयी है। बीच-बीच में अशरीरिणी सुमति जब उन दोनों के बीच आकर खड़ी होती है, उस समय उसका विवर्ण मुख देख कर वे समझ जाते हैं। सुमति की मृत्यु के लिये उत्तरदायी कोई नहीं है, सुरमा के साथ वे स्पष्ट बातें नहीं करते, किन्तु संकेत से करते हैं, वे बराबर कहा करते हैं—कल भी कहा था—अपने को व्यर्थ पीड़ा न दो। मैंने पूर्णतः विचार कर देखा है। फिर भी उसके मन की ग्लानि दूर नहीं हुई! ज्ञानेन्द्रनाथ जानते हैं कि मन ही मन वह अपने से प्रश्न करती है, उसने क्यों यह सब किया? क्यों उसे कष्ट देकर खेलने गयी थी? शायद सुमति और उनके बीच यदि यह हँसी-खेल खेलने न जाती, तो सुमति का यह शोचनीय परिणाम न होता! यह बात आंशिक सत्य है। नहीं। सबसे पहले इसके लिये सुमति स्वयं दायी है। उसने स्वयं ही आग को जलाया, सुरमाने उसमें फूँक लगायी, ईंधन जुटाया। ईर्ष्या की आग। वही आग बाहर जल उठी। सचमुच, उसके मन की आग उस टेनिस के फाइनल के समय लिये हुए फोटोग्राफ को पकड़कर बाहर फैली। टेनिस फाइनल जीतने के बाद लिया हुआ दोनों का चित्र। अनजान में दोनों ही दोनों की ओर देख कर हँस पड़े थे। सुरमा की कापी उसके घर में टँगी हुई है। उस टेनिस खेलके फाइनल के कुछ दिन बाद। दुकानदार ने फोटोग्राफ यथारीति माउण्ट कर पैकेट बाँध कर तीन उनके घरमें और तीन जजसाहब की कोठी में भेज दिया था। वे उस समय कोर्ट में थे। वे और सुरमा दोनों ही यह नहीं जानते थे कि परस्पर उन्होंने हँसकर एक दूसरे की ओर देखा था,

नेत्रों की दृष्टियों में प्रगाढ़ अनुराग की व्यंजना फूट उठी है। ऐसा जान लेने पर अवश्य सावधान हो जाते। फोटोग्राफर को मना कर देते कि घर पर फोटो न भेजे। और शायद किसी दिन चित्र को घर में आने न देते। जीवन में प्रेम के दुर्दम वेग को उन्होंने उसी नदी के बाँध के समान कस कर बाँध रखा था। जिधर उनकी प्रकृति के निर्देश से गतिमार्ग था, सुरमा की दो बाहुओं के दो तटों के बीच का मार्ग प्रशस्त और नीची समतल भूमि की प्रसन्नता से वह मार्ग प्रसन्न है, उस मार्ग में वे उसे भागने नहीं देते। जीवन के सब अंगों में तनाव था और कहना चाहते थे, किन्तु फिर भी बन्धन को इतना शिथिल नहीं हो नेदिया। नथिंग इम्मारेल, नथिंग इल्लीगल—कोई अनैतिक नहीं, कोई अवैधानिक नहीं। नीति के विचार से, देशाचार के कानून आदि सभी विचारों से वे निरपराध, निर्दोष थे। किन्तु सुमति इस बात पर विश्वास नहीं करती। करना नहीं चाहती। उनके घर आते ही सुमति चित्रों को उनके मुँह के सामने रख कर अग्नि उगलने के पूर्व ज्वालामुखी के समान स्तब्ध होकर खड़ी हो गयी।

वे चित्र सामने बिखरे पड़े थे। एक टेबिल पर, दूसरा फर्श पर उनके पैरों के पास और तीसरा भी फर्श पर ही पड़ा था—किन्तु उसका मुँह उल्टा था।

चित्र देख कर वे चौंक उठे।

सुमति निष्ठुर कण्ठ से कह उठी, लज्जा नहीं लगती तुम्हें? तुममें लज्जा है क्या? निर्लज्ज, चरित्रहीन—

क्षणभर आत्मसम्वरण करके उन्होंने धीर गम्भीर कण्ठ से कहा—सुमति! इसमें उसे सावधान कर देने की व्यंजना थी।

सुमति ने उसपर ध्यान नहीं दिया। वह चिल्ला कर बोल उठी, चित्र की ओर अच्छी तरह देखो ? देखो इसमें कौन परिचय लिखा हुआ है।

ज्ञानेन्द्रनाथ बोले—मित्रता का और मैच जीतने के आनन्द का।

—किसका ?

—मित्रता का।

—मित्रता का ? युवक-युवती की मित्रता ? उसका नाम क्या है ?

—मित्रता।

—नहीं। प्रेम।

—मित्रता और प्रेम। इसे समझने की सामर्थ्य तुममें नहीं है। तुम सन्देह में अन्धी हो गयी हो। नीचता की अन्तिम सीढ़ी पर उतर गयी हो।

—तुम अन्तिम सीढ़ी के भी नीचे जो पाप का पंक है, उसमें गले तक डूब गये हो। तुम चरित्रहीन हो, तुम नीच से भी नीच हो। अनन्त नर्क में भी तुम्हें स्थान नहीं मिलेगा।

कहते ही वह घर से बाहर चली गयी। वे उस समय थके और भूखे थे, किन्तु इस समय विश्राम और आहार विष बन गया। वे भी घर से बाहर चले गये। उन्हें भय भी हुआ, सुमति से नहीं, अपने क्रोध से। उद्धत क्रोध और क्षोभ के सम्वरण का अवसर पाने से वे जैसे बच गये। उन्होंने उन्मत्त के समान अपनी मृत्यु कामना की। सुमति को वैधव्य का दण्ड देना चाहा। बाइसिकिल पर सवार होकर शहर से दूर एक स्थान पर स्तब्ध होकर पत्थर बने हुए मनुष्य के समान बैठ गये। प्रथम उनको उन्मत्त चिन्ता; नहीं, चिन्ता नहीं, कामना हुई थी, मृत्युकामना, संसार के त्याग

को कामना, सुमति के हाथों से मुक्ति की कामना। इसके बाद धीरे-धीरे वह चिन्ता स्थिर हो गयी थी—धू-धू कर जलनेवाले ग्रह के जोतिष्मान हो जाने के समान। उसी ज्योति से हृदय आलोकित कर उन्होंने अन्तर के कण-कण को तीक्ष्ण दृष्टि से खोजकर देखा। विश्लेषण किया—विचार कर देखा। नाथिंग इम्मारल, नाथिंग इल्लीगल—कोई अनीति नहीं, कोई पाप नहीं।

मित्रता। गहरी मित्रता। सुरमा उनकी अन्तरंगतम मित्र, यह बात वे स्वीकार करेंगे। और भी भली-भाँति देखा। नहीं, उससे भी कुछ अधिक। सुरमा को पाने की आकांक्षा भी। दूसरे ही क्षण और भी गहरा पर्यवेक्षण किया। नहीं, पाने की अकांक्षा नहीं। पाने की आकांक्षा नहीं, न पाने के लिये अन्तरमें फल्गुर के समान केवल वेदना की एक धारा बहती रही है और वह धारा बाढ़ के प्रवाह में दोनों किनारे तोड़ने के लिये उद्यत नहीं है। निश्शब्द जीवन की गहराई में आँसुओं का उत्स बनकर केवल प्रवाहित हो रही है और आजीवन होती रहेगी।

उन्होंने चिन्ता के प्रकाश को न्याय और नीति के विधान लिखी हुई अक्षय शिलालिपि पर प्रकाशित किया। अविचलित धैर्यपूर्वक जीवन की श्रेष्ठ बुद्धि का प्रयोग कर प्रायः ध्यान योग में उस लिपि का पाठोद्धार किया। किसी समाज, किसी राष्ट्र, किसी धर्म की व्याख्या उन्होंने ग्रहण नहीं की। किसी व्याकरणकार का कोई विशेष शब्दार्थ उन्होंने ग्रहण नहीं किया और पाठ समाप्त कर निस्संशय होकर वे उस दिन वहाँ से उठ खड़े हुए। उस समय चारों दिशायें गाढ़े अन्धकार से ढँक गयी थीं। दियासलाई जलाकर घड़ी देखी, फिर एक बार आकाश की ओर देखा।

इतनी रात ! जनवरी का प्रारम्भ, रात के पौने दस बजे हैं ! आफिस से निकले थे पाँच बजे। जान पड़ता है कि घर से छः बजे निकले थे। पौने दस बजे हैं ! प्रायः चार घण्टे केवल सोचते रहे। सिगरेट भी नहीं पीये। उस समय सिगरेट खूब पीते थे। सुमति को इसमें भी आपत्ति थी।

(घ)

क्लान्त चित्त से घर लौटे; क्रोध, असहिष्णुता आदि को कठोर संयम से संयत कर रखा था। सुमति औंधी होकर बिछौने पर पड़ी हुई थी। बाइसिकिल पकड़ कर रखने के लिये अर्दली बुलाने पर नहीं मिला। नौकर भी नहीं था। रसोइया ! रसोइये का भी पता न चला। सोचा था, शायद सब उन्हें खोजने गये हैं ! मन छिः छिः करने लगा। कल लोग क्या कहेंगे ! जहाँ खोजने जायँगे, वहाँ के लोग चकित हो जायँगे। तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। चुपचाप पोशाक उतार कर, हाथ-मुँह धोने के बाद लौटकर सोने के कमरे में एक कुर्सी पर बैठ गये। आवश्यकता पड़ने पर उसी चेयर पर सारी रात काट देंगे। सुमति ठीक एक ही प्रकार सोई थी, अचल होकर। अन्त में उन्होंने कहा कि मुझे खोजने के लिये उन सभी को भेजने की तो कुछ आवश्यकता नहीं थी।

अब सुमति ने उत्तर दिया, खोजने कोई नहीं गया है। कारण, तुम कहाँ गये हो, इसे अनुमान करने में तो किसी को कष्ट नहीं होता। उन्हें मैंने आज छुट्टी दे दी है। बाजार में गाना हो रहा है, वे गाना सुनने गये हैं। इसके बाद ही वह उठ बैठी। उसने कहा—मैंने जानबूझ कर छुट्टी दी है, तुम्हारे साथ मेरा समझना-बूझना है।

सुमति के दोनों नेत्र लाल हो गये। बहुत देर तक निरन्तर रोई, उनका हृदय ममता से टन-टन कर उठा।

वे अकृतिम गाढ़े स्नेह के आवेग में ही बोले—सुमति, तुम अत्यन्त बच्ची हो! एक बात तुम क्यों नहीं समझ पाती—।

—मैं सब समझती हूँ। मैं तुम्हारे समान पण्डित नहीं हूँ। उस अधार्मिक माँ-बाप की प्यारी कन्या के समान लिखने-पढ़ने का ढंग भी मुझे नहीं आता, किन्तु मैं सब समझती हूँ।

धीर कण्ठ से ही ज्ञानेन्द्रबाबू ने कहा—नहीं, समझती नहीं।

—समझती नहीं? तुम सुरमा से प्रेम नहीं करते?

—प्रेम करता हूँ। जिस प्रकार मित्र-मित्र से प्रेम करता है, उसी प्रकार प्रेम करता हूँ।

—मित्र, मित्र, मित्र! मिथ्या, मिथ्या, मिथ्या! बोलो ईश्वर की शपथ लेकर बोलो, उसके साथ जितना अच्छा लगता है, उतना मेरे साथ अच्छा लगता है?

उसका उत्तर एक ही बात में देता हूं, थोड़ा धैर्यपूर्वक विचार कर देखो। तुम्हारा-मेरा सम्बन्ध जीवन-जीवन में, अंग-अंग में, सैकड़ों बन्धनों द्वारा जकड़ा हुआ है। तुम्हारी या मेरी एक की भी मृत्यु से भी उस बन्धन की गाँठें नहीं खुलेंगी। मैं निकट रहूँ, दूर रहूँ, पूर्णरूप से तुम्हारा—

सुमति चिल्ला उठी—नहीं, झूठी बात।

—नहीं, झूठी नहीं। मन को प्रसन्न करो सुमति। वही प्रसन्नता ही जीवन की श्रेष्ठ मिष्टता है। उसके अभाव में अन्न भी तीखा हो जाता है। यदि वास्तव में तुम मुझसे प्रेम करती हो, तो क्यों तुम्हारे मनमें ऐसा

विचार आता है ? तुम्हारे साथ ही तो मैं एक घर में रहता हूँ, एक आशा, एक संचय है। उसके साथ मिलना-जुलना तो अवसर-अवसर पर होता है। खेल के मैदान में, आलोचना सभा में उसका मेरा साथ होता है।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने विनय पूर्वक कहा; किन्तु सुमति ने कठोर स्वर में उत्तर दिया -

—हाँ, वही तो कहती हूं। मेरे साथ, मेरे बन्धन में तुम काँटो की सेज पर सोते हो, साँप की कुण्डली में निरन्तर जकड़े रहते हो, थोड़े समय के लिये उसके साथ ही तुम्हें कितना आनन्द, कितना अमृत-स्पर्श प्राप्त होता है।

प्रौढ़ ज्ञानेन्द्रनाथ के मुख पर एक क्षीण हास्यरेखा फूट पड़ी। आनन्द और अमृत-स्पर्श दोनों शब्द उन्हींके हैं। सुमति ने दो ग्रामीण अश्लील शब्द व्यवहार किये थे। उस समय उनको भूख सता रही थी। प्रकृति के अमोघ नियमकी क्रिया उनकी चेतना को जेलखाने में बेंतका दण्ड पाये हुए अभियुक्त की भाँति आघात करती जा रही थी। बेंतों के आघात से जर्जर कैदी कई चोट खाकर ही अज्ञान हो जाते हैं। उनकी चेतना की भी वैसी ही अवस्था थी। उन्होंने प्राणपण से अपने को संयत रखने की चेष्टा की, परन्तु समर्थ नहीं हुए। अथवा शीशे की चिमनी फूटने के कारण धधक उठने वाली लालटेन की शिखा के समान अपने को अग्निकाण्ड में फेंक दिया। आत्म-संयम के शीशे के आवरण से अन्तर को ढँक कर अपने को और स्निग्ध और निरापद रखकर प्रकाश नहीं कर पाये। क्षुब्ध क्रुद्ध अन्तर की आग की दहकती हुई विश्वग्रासी शिखा के समान अपने को प्रकाशित किया। उन्होंने कहा—तुमने जो दो बातें कही हैं, उनके उच्चारण करने

में मेरी जीभ को बाधा पड़ती है। उसके बदले मैं कहता हूँ—आनन्द और अमृतस्पर्श। हाँ, सुरमा का संस्पर्श में वह मुझे मिलता है। मैं सत्य को अस्वीकार नहीं करूँगा। किन्तु क्यों मिलता है, तुम बता सकती हो? और तुम क्यों नहीं दे पाती?

—तुमको भ्रष्टचरित्र जानकर नहीं दे पाती। और भ्रष्टचरित्र होने के कारण तुम्हें उससे आनन्द मिलता है, मतवाले जैसे मादक को सुधा कहते हैं।

—सुमति, यदि मैं मतवाला ही हूँ, यदि मद को ही मैं सुधा मानता हूँ तो मुझसे घृणा करो, मुझे मुक्ति दो।

निष्ठुर श्लेष के साथ सुमति ने तत्क्षण उत्तर दिया—सर्प-दंशन के समान—तब तो बड़ा आनन्द आयेगा? आयेगा न?

उस दंशन की ज्वाला से वे विचलित हो गये, किन्तु उस विष से वे अज्ञान नहीं हुए। कई क्षणों तक स्तब्ध रहने के बाद फिर धीर कण्ठ से बोले—सुनो सुमति, मेरे धैर्य का बाँध तुम तोड़ रही हो। इसके अतिरिक्त मैं भूखा और थका हूं। तुमसे अपनी अन्तिम बात कहे देता हूं। तुम्हारे साथ मेरा जीवन सामाजिक-विधान से जुट गया है। उस विधान के अनुसार तुम और मैं बन्धन तोड़ नहीं सकते। तुम स्त्री, मैं स्वामी हूँ। मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूँ, तुम्हारा भरण-पोषण करूँगा। तुम्हारी रक्षा करूँगा। अपनी उपार्जित सम्पत्ति तुम्हें दूँगा। मेरे गृह में तुम गृहिणी होगी। मेरा शरीर तुम्हारा है। संसार में जो वस्तु, जो सम्पत्ति, जो हाथ से दी जाती है, वह सब तुमको देने के लिये वचनवद्ध हूं। मैंने वह तुम्हें दिया है, और सदा देता रहूँगा। थोड़ी भी प्रतारणा नहीं की, कोई अनाचार नहीं किया है।

—नहीं किया है ?

—नहीं।

—तुम सुरमा से प्रेम नहीं करते ? इतनी बड़ी मिथ्या तुम शपथ कर बोल सकते हो ?

—तुम्हारे अधिकार में हस्तक्षेप न कर किसी से प्रेम करना अनाचार नहीं है।

—नहीं है ?

—नहीं—नहीं—नहीं। इसके पहले तुमसे पूछूँगा, तुम बता सकती हो कि प्रेम का आकार कैसा है ? उसको हाथ से छू सकते हैं ? उसको क्या हाथ से दिया जाता है ? तुम दे सकती हो ? अपना अकपट प्रेम मेरे हाथ में दे सकती हो ?

इस बार सुमति को विस्मय हुआ। एक क्षण तक उत्तर न दे पायी। कुछ क्षण स्तब्ध रह कर बोली—बतंगड़ बढ़ा कर असली बात दबाना चाहते हो, किन्तु मैं वैसा न करने दूँगी।

—बतंगड़ नहीं है, बतंगड़ मैं नहीं करता। सुमति, प्रेम देने की वस्तु नहीं, लेने की वस्तु है। कोई किसी के प्रेम में पागल होते सुना जाता है, देखा जाता है, ऐसी अवस्था में असली महिमा जो प्रेम करता है, उसकी नहीं है, जिससे प्रेम किया जाता है, उसकी है। मनुष्य पहले महिमा से प्रेम करता है, इसके बाद उस मनुष्य से। कहीं वह महिमा रूप की होती है और कहीं किसी गुण की। सुरमा की महिमा है, वह सम्भवतः तुम देख नहीं पाती, मैं देख पाता हूँ, इसीलिये मैंने उससे प्रकृति के नियम के अनुसार प्रेम किया है।

—तुम्हें लज्जा नहीं लगती ? मुँह में बाधा नहीं पड़ती ? सुमति चिल्ला उठी।

—नहीं, सबल दृढ़कण्ठ से उन्होंने कहा। उनका कण्ठ स्वर काँपा नहीं। उनके नेत्र सुमति के नेत्रों से हटे नहीं। भूमि की ओर नहीं पड़े। सुमति जैसे विभ्रान्त हो गई। कुछ क्षणों बाद उसने वह विभ्रान्ति दूर की। अब वह चिल्लाकर बोल उठी—तुम्हारी जिह्वा गिर जायगी। यह बात न कहो।

—लाख बार कहूँगा सुमति। चिल्ला कर सबके सामने कहूँगा। मेरी जिह्वा नहीं गिरेगी, मैं निर्दोष हूँ, मैं निष्पाप हूं।

निष्पाप ! निष्ठुरता पूर्वक सुमति हँस पड़ी। इसके बाद बोली—धर्म देगा उसकी साक्षी !

—धर्म ? ज्ञानेन्द्रनाथ ने हँस कर कहा—तुम धर्म नहीं जानती, तुम धर्म की दुहाई न दिया करो। तुम्हारे अविश्वास का धर्म केवल तुम्हारा है। मेरा धर्म है, मानवता का धर्म, जीवन का धर्म। वह तुम समझ न पाओगी। मत समझो। केवल यही जान रखो—विवाह के समय जो जो शपथ ग्रहण कर तुमको मैंने स्वीकार किया है, उनका मैंने निष्ठा के साथ पालन किया है। करता हूँ, और जब तक जीवित रहूँगा करूँगा।

-- कर्तव्य ? किन्तु मन ?

—वह तो कह चुका हूँ, किसी को देने से नहीं दिया जाता, जिसमें लेने की शक्ति रहती है, वह ले लेता है। वहाँ मनुष्य का विधान लागू नहीं होता। वहाँ प्रकृति का विधान चलता है। तुममें उस वस्तु के लेने की जितनी शक्ति है, उससे एक कण भी अधिक नहीं ले पाओगी। किन्तु हाँ, इतना मनुष्य कर सकता है, मन के घर के हाहाकार को लोहे

के दरवाजे द्वारा बन्द रख सकता है। उसको बन्द रख कर भी वह हँस सकता है, कर्तव्य कर सकता है, जीवित रह सकता है। मैं भी ऐसा ही करूँगा। मुझे खोंच खोंच कर तुम आहत न करो। सुमति को एक बार फिर कोई उत्तर न मिला। अकस्मात् पागल के समान उठी और टेबिल पर की फाइलों को खिसका कर, कितनों को नीचे फेंक कर तितर-बितर कर दिया। उन्होंने उसका हाथ दबा कर कहा—क्या हो रहा है?

—फोटो कहाँ है?

—फोटो क्या होगा?

—जलाऊँगी।

—ना।

—ना, नहीं। मैं अवश्य जाऊँगी।

—ना!

—नहीं दोगे?

—ना। वह फोटो मैं घर में नहीं रखूँगा, किन्तु जलाने न दूँगा!

सुमति ने सिर पीटना शुरू किया—नहीं जलाने दोगे? नहीं दोगे?

ज्ञानेन्द्रबाबू ने ड्रायर से फोटो निकाल कर फेंक दिया। केवल फोटो ही नहीं, केश वाला लिफाफा भी। क्रोध से अभिभूत सुमति ने उसे खोल कर नहीं देखा। उसने सबको ले जाकर आग में जला दिया।

उनमें भी अब और सहने को शक्ति नहीं रह गयी थी। भोजन करने की इच्छा नहीं थी। केवल चाहा था, सब कुछ भूल जाना। उन्होंने आलमारी खोलकर ब्राण्डी का बोतल निकाला। उसी समय उन्होंने पीना सीखा था। नियमित, थोड़ा सा परिश्रम को कम करने के लिये। उस दिन अनियमित पीकर बिछौने पर पड़ गये।

सुमति के भीतर की आग उस समय बाहर जल रही थी। वह उस समय उन्मत्त थी। केवल फोटो को ही आग में जला कर शान्त नहीं हुई, और भी जितने बँधे हुए फोटो सुरमा के थे, उनमें से एक सुमति सुरमा से स्वयं ही माँग लायी थी, और कई सुरमा ने आत्मीयता वश दिया था उनको भी तोड़-फोड़ कर उनके शीशे टुकड़े-टुकड़े कर उसने आग में डाल दिया। उसके साथ उसने सुरमा के सभी पत्रों को भी आगमें डाल दिया। फूँक-फूँक कर आग जलाने के बाद ही वह सोयी। छः घण्टे के बाद वही आग छाजन में लग गयी। सुमति के अन्तर की आग। प्रकृति का अमोघ नियम। वृक्षकी शाखा-शाखा में, पत्ते में, पल्लव में, फूल-फूल में जो तेजशक्ति सृष्टिसमारोह करती है, वही तेज परस्पर संघर्ष के पथ से आग बनकर पहले सूखी पत्तियों को जलाती है, इसके पश्चात् वनस्पति को जलाती है, उसके साथ सारे वन को ध्वंस कर देती है। अन्तमें अंगार और भस्म ही उसका परिणाम होता है।

ज्ञानेन्द्रबाबू ने गहरी साँस ली। जल कर भस्म हो जाने पर भी सुमति ने मुक्ति नहीं दी।

बाहर टन-टन कर दो का घण्टा बजा। काफी का कप उनके हाथ में ही था। उसे रखना भूल गये थे। अब नीचे रखा।

अर्दली आकर इजलास में जानेवाले दरवाजे का परदा पकड़कर खड़ा हो गया। जूरी वकील पहले ही आकर अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये। अदालत के बाहर उस समय साक्षी की पुकार शुरू हुई।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने आकर आसन ग्रहण किया। हाथ में पेन्सिल उठा ली। दृष्टि फैला दी खुले दरवाजे से सामने के अहाते में। मन गहराई से और गहराई में डूब गया। न तो वहाँ सुमति है, न सुरमा है, जान पड़ता है, वहाँ विश्वसंसार ही नहीं है—है, केवल एक प्रश्न, उस अभियुक्त ने जो प्रश्न किया है। साधारण सेशन के मामले में यह प्रश्न इस प्रकार नहीं उठता; वहाँ प्रश्न रहता है अभियुक्त के सम्बन्ध में। उन्होंने अभियुक्त की ओर देखा। ज्ञानेन्द्रनाथ चकित हो गये। अभियुक्त के पीछे वह क्या है? कौन?—ना—! कोई नहीं, वह तो छाया है, स्काइलाइट के भीतर से थोड़ा तिरछा होकर आकाश का प्रकाश अभियुक्त पर पड़ रहा है। एक छाया उसके पीछे पड़ रही थी। जैसे कोई खड़ा हो।

पहला साक्षी आकर कठघरे में खड़ा हो गया। वह था तहकीकात करनेवाला पुलिस कर्मचारी। शपथ लेकर वह कहता गया—खगेन की मृत्यु का समाचार पाने की बात, थानेके रजिस्टर में लिखने की बात। अभियुक्त नगेन ने ही खबर दी थी। ज्ञानेन्द्रबाबू ने फिर देखा अभियुक्त की ओर। अभियुक्त के पीछे की छाया और बड़ी होकर पूर्व ओर की दीवार पर पड़ रही थी। वर्षा के तीसरे पहर का प्रकाश अब पश्चिम की खिड़कीसे आकर फैल रहा है। दारोगा की गवाही समाप्त हो गयी।

घड़ी में टन-टन चार बजा। ज्ञानेन्द्रनाथ बोले—कल जिरह होगी। वे उठ पड़े। आह! उस समय भी उदासीनता दूर नहीं हुई थी।

———

छः

(क)

ज्ञानेन्द्रनाथ पूर्णतः उदासीनता लिये हुए घर लौटे। दो दिन बाद। मामले का अन्तिम दिन है। सब समाप्तकर घर लौटे। पृथ्वी का सब कुछ उनके मन-दृष्टि-चैतन्य के गोचर से दूर हो गया था! कहीं, कुछ नहीं। आँखों के सामने नाचती है अभियुक्त की मूर्ति। कानों में दोनों पक्षों के वकीलों की उक्तियाँ बज रही हैं। उनके मनमें समस्त घटनाओं के वर्णन से निर्मित पट है। और उनके चैतन्य को आच्छन्न कर रखी है अभियुक्त की बातें।

थाने से प्रारम्भ कर सेशन अदालत में विचार होने तक सर्वत्र वह एक ही बात कहता आ रहा है। "हुजूर, मैं जानता नहीं, दोषी हूँ या निर्दोष। भगवान जानते हैं और हुजूर न्याय कर के कहेंगे।" ये बातें जैसे केवल बातें नहीं हैं। उससे भी कुछ अधिक हैं। उसने जवाब में बहुत कठिन प्रश्न उपस्थित कर दिया है। कण्ठ स्वर के सकरुण असहाय अभिव्यक्ति, नेत्रों की दृष्टि में वही असहाय विह्वलता, उसके हाथ जोड़ कर निवेदन करने की वह अकपट भंगी, सब ने मिलकर उनके चैतन्य पर एक आश्चर्य-जनक प्रभाव विस्तार किया है। "अपराध नहीं किया है" यह जावाव देकर ही उसने समाप्त नहीं किया, उसने पूछा है—न्यायधीश, आप यह बात कहते हैं! ईश्वर से जिस प्रकार युग-युगान्तर में मनुष्य इसी प्रकार का प्रश्न करता आया है।

इस प्रश्न ने उनके समस्त चेतना को चकित कर दिया है। निद्रा में नेत्रों पर तीव्र प्रकाश की छटा और उत्ताप के स्पर्श से जाग कर मनुष्य जैसे विह्वल हो जाता है, उसी प्रकार वे विह्वल हो उठे हैं। उस व्यक्ति के चरम संकट के मुहूर्त की अवस्था की कल्पना करनी होगी। स्थल पर चलनेवाला, मुक्त वायु के स्तर में रहनेवाला जीव छेदरहित दम-घोटक जल में पहुँचता जा रहा था, और कहाँ जाकर खड़ा हुआ था, इसका अनुमान करना होगा। मृत्यु के सम्मुख एक निस्तरंग सीमाहीन अत्यन्त काला आवरण क्षण-क्षण उसे घेर रखा था। अत्यन्त भय, निष्ठुरतम यंत्रणा के बीच आज के मनुष्य को हजार-हजार वर्षों के इतिहासवाले सभ्य मनुष्य को, प्रागैतिहासिक आरण्य युग के आदिमतम मनुष्य की पाशविक चेतना के युग में ढकेल ले गयी। वहाँ दया नहीं है, माया नहीं है, स्नेह नहीं है, ममता नहीं है, कर्तव्य नहीं है, केवल आदिमतम प्रेरणा लिये हुए प्राण है, जीवन है

उन्होंने कल्पना कर पाया था। कल्पना नहीं, ठीक इसी भयंकर अवस्था की प्रत्यक्ष अभिज्ञता की स्मृति, उनके मन में जाग उठी थी। उन्होंने अनुभव कर पाया था।

(ख)

अकस्मात् मर्मान्तक श्वासरोध एक निष्ठुर यंत्रणा है। किसी ने जैसे हृत्पिंड को कठोर हाथों से दबा रखा है। उसके साथ मस्तिष्क में एक जलन हो रही है। खाँसते-खाँसते नींद टूट गयी। वे

यंत्रणा से भय फैली हुई दृष्टि डालकर भी कुछ समझ नहीं पाये। एक सफेद बादल ने उन्हें जैसे घेर रखा है। और एक गन्ध! और उस पुंज पुंज आवरण को प्रदीप्त करने वाली एक छटा दीख पड़ी।

धुआँ! क्षण भर में आग की अनुभूति हुई। घर में आग लगी है।

सिर के ऊपर की फूस का सारा छाजन आग में जल रही है। जनवरी के अन्त के जाड़े में घर की सब खिड़कियाँ-दरवाजे बन्द थे। धुँए से घर विषैली वायु से भरी हुई आदिम पृथ्वी के समान भयंकर हो गया। घर का प्रकाश बुझ गया। आग की लपट से लाल धुआँ ही धुआँ दीख पड़ता है। उसके साथ भयंकर गर्मी। उनके सिर में उस समय मद की नशा का चक्कर और यंत्रणा है। मृत्यु जैसे अग्निमुखी होकर उन्हें और सुमति को निगलने आ रही है। सुमति फर्श पर सोयी थी। वह उस समय जागी है, किन्तु भयार्तविह्वल नेत्रों के गड्ढों से दोनों नेत्र जैसे बाहर निकल रहें हैं। उसने विह्वल की तरह एक बार चिल्लाया।

वे इस अवस्था में भी अपने को संयत कर साहस लाकर कठोर होकर खड़े हो गये। धुँये में सब कुछ ढँकता जा रहा था, आँखों से जल गिर रहा था, ऐसी ही अवस्था में उन्होंने जाकर सुमति का हाथ पकड़ कर कहा—आओ, शीघ्र, आओ।

सुमति ने जोर से उनका हाथ पकड़ लिया।

दरवाजा कहाँ है? किस ओर?

सुमति उस दिन दरवाजे की खिल, ऊपर-नीचे की दोनों सिटकिनियाँ लगा कर सोयी थी। इनको खोलने के शब्द से उसकी नींद अवश्य टूट

जायगी ! वह जानती थी, उसे भय था कि कहीं रात में चुपके-चुपके दर-वाजा खोलकर बाहर न चले जायँ ।

तो भी उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा। अपनी शिक्षा और संयम से उन्होंने अपने को प्राणपण से स्थिर रखा। वे एक-एक करके सिटकिनी और खिल खोलकर बरामदे में निकल आये। उस समय साँस लेना सहज हो गया, किन्तु सारे बरामदे का छाजन जल कर गिर पड़ी। एक ओर गिर पड़ी है, बीचका भाग गिर रहा है। सिर पर गिर रहा है जलती हुई आग का एक स्तर। ठीक इसी समय सुमति चिल्ला उठी, और एक बड़े बोझे के समान औंधी होकर गिर पड़ी। उसके खिंचाव से उसके साथ-साथ वे भी गिर पड़े। उनके ऊपर गिर पड़ी छाजन के ढाँचे के साथ बँधी हुई ढेर की ढेर जलती हुई फूस। कैसी भयंकर यंत्रणा है! उस समय समस्त संसार एक महा अग्निकुण्ड में विलुप्त हो गया। किन्तु बाधा पड़ी! उनका हाथ कहीं अटक गया है! ओह, सुमति ने पकड़ा है! क्षण भर में उन्होंने हाथ छुड़ा लिया और किसी प्रकार दीवार पर से नीचे कूद कर खुले स्थान में गिर पड़े। वे अवस्था समझ पा रहे हैं। इस अवस्था की ठीक कल्पना नहीं की जा सकती। उन्होंने की थी, भुक्तभोगी होने के कारण ही कल्पना करने में समर्थ हुए थे।

"ईश्वर जानता है, और हुजुर न्याय कर के कहेंगे।"

अभियुक्त की ये बातें चैतन्य को आच्छादित कर अब भी ध्वनित हो रही हैं।

सुरक्षा के वकील ने भी आत्म-रक्षा के अधिकार के मौलिक प्रश्न को ही सबसे अधिक महत्व देकर उठाया है। जीवन का जन्मसिद्ध प्रथम अधिकार

अपने को बचाने का अधिकार सबसे पहले है। यह अधिकार लेकर ही मनुष्य जन्मग्रहण करता है। उसने दण्डविधान की धारा एटीवन की नजीर दी थी। उन्होंने एक छोटी गहरी साँस ली। अभागा अभियुक्त। धारा एटीवन उसे डूबती हुई अवस्था में भी गला दबाकर पकड़ने का अधिकार नहीं देती।

अभियुक्त के वकील ने अवश्य ही कौशल से उसका आवश्यक अंश जूरियों के सामने उपस्थित किया था।

"A and B, Swimming in the sea after a ship wreck get hold of a plank not large enough to support both, A pushes B, who is drowned. This in the opinion of Sri james stephen, is not a crime.

किन्तु इसके बाद भी कुछ है। सर जेम्स स्टीफेन ने और भी कुछ कहा है—

"......as thereby A does B no direct harm but leaves him to his chance of another Plank."

यह धारा उनके मन में उज्ज्वल अक्षरों में खुदा हुआ है।

इस विधान को लेकर उन्होंने बार-बार जाँच कर अपने को मुक्त किया था।

सुमति का हाथ ही उन्होंने छुड़ा दिया था, कोई आघात नहीं किया था। आघात कर हाथ छुड़ाने पर उनका दोष होता,अवश्य सुमति के शरीर पर एक चोट का चिह्न था; उसको किसीने दिया नहीं था, वह था सुमति की नियति का परिहास, उसके अपने कर्म का फल। सुमति के पैर के तलवे में

शीशे का एक बड़ा टुकड़ा पूरा चुभ गया था। जो कई बँधे हुए फोटो पटक कर उसने स्वयं ही तोड़ दिया था, उन्हीं फोटो के शीशे का एक पतला लम्बा टुकड़ा! उसी के चुभ जाने से ही इस प्रकार हठात् उसी चरम संकट के क्षण में मुँह के बल गिर पड़ी थी।

ब्रह्मलेख! ब्रह्मलेख के समान ही विचित्र एक अनिवार्य परिणाम सुमति ने अपने हाथ से तैयार किया था। उसने निवृत्ति का एक मार्ग भी खुला नहीं रखा था। अपने हाथ से ही दृढ़ता के साथ बन्द कर दिया था। जीवनप्रकृति और जड़प्रकृति एक साथ जब क्षुब्ध हो जाती है तो उनसे रक्षा सम्भव नहीं होती। उस दिन उनके जीवन में ऐसा ही एक परिणाम अनिवार्य था। सुमति के हाथ से जलायी हुई आग यदि उस प्रकार घर में न लगती तो भी अन्य प्रकार से ऐसा ही परिणाम होता। वे स्वयं आत्महत्या करते। सुमति को गहरी नींद आ जाने पर ही आत्मघात करने का निश्चय कर वे सोये थे। किन्तु अधिक मद पीने के कारण उनकी चेतना के साथ ही उनका संकल्प भी शिथिल हो गया था। उनको इसमें सन्देह नहीं था कि उनके आत्महत्या करने पर सुमति भी आत्मघात अवश्य कर लेगी। काया के साथ छाया की तरह उसने उनका जीवन जकड़ कर पकड़ रखा था।

(ग)

कोठी के अहाते में गाड़ी रुकते ही उनका मन वास्तविक संसार में लौट आया। जज साहब की कोठी। वर्षा का धुँधला अपराह्न! आकाश में मेघों का आवरण दिगन्त तक विस्तृत है। बड़ी निस्तब्धता। कहाँ? सुरमा कहाँ? वह बाहर कहीं भी नहीं है!

न रहने से अच्छा ही है।

किन्तु बाहर की इस प्रकृति का रूप जैसे उसके ऊपर एक छाया डाल रहा है। बावर्ची खाने में आग लगने के दिन से ही सुरमा मलीन, दुःखी और स्तब्ध रहती है।

ज्ञानेन्द्रनाथ गाड़ी से उतर कर क्षण भर खड़े रहे।

एक छाया। यह उनकी अपनी छाया है। पास की हरी लान पर फैल गयी है। अभियुक्त नगेन से उनकी छाया बहुत बड़ी है। वे नगेन से बहुत लम्बे हैं। ज्ञानेन्द्रनाथ ने गहरी साँस छोड़ी। इसके बाद दृढ़ कदमों से बँगले की ओर अग्रसर हुए। सीधे आफिस-घर की ओर।

बेयरा आकर खड़ा हो गया—जूता खोलेगा—।

—ना। हाथ से इशारा कर बोले—जाओ। जाओ।

वे घर में घुस गये। आफिस-घर पार कर वे बीच के बड़े घर में गये। उस घर के बीच में खड़े होकर चारों ओर दृष्टि डाली। घर प्रायः सन्ध्या-काल के अन्धकार के समान छाया युक्त था। उनकी छाया भी उसमें मिल गयी। उन्होंने आगे बढ़ कर सामने की दीवार के ढँके हुए चित्र का परदा हटा दिया।

सुमति की आयल पेंटिंग धुँधले प्रकाश में स्पष्ट दिखाई नहीं देती, थी केवल दोनों बड़े-बड़े सफेद नेत्र चमक रहे थे।

वे उस चित्र की ओर अपलक दृष्टि से देखते हुए खड़े रहे।

वह क्या अभियोग करती है?

वे क्या दुर्बल होते जा रहे हैं?

—तुम इस घर में ? बाहर से कहते-कहते घर में प्रवेश करने पर ही स्वामी को सुमति की ओर टक लगाये देखकर सुरमा स्तब्ध हो गयी।

—उधर की खिड़की खोल दो तो ?

—खोल दूँ ?

—हाँ।

सुरमा उनकी बात न टाल सकी। खिड़की खुलते ही चित्र पर प्रकाश पड़ने लगा।

सुरमा सिहर उठी। दूसरे ही क्षण आगे बढ़ी—चित्र पर वह परदा खींच देगी।

—ना, ढँको मत।

—क्यों ? अकस्मात् तुम्हें क्या हो गया ?

सुरमा के मुँह की ओर ताक कर ज्ञानेन्द्रनाथ बोले—उसी दिन से बीच-बीच में उसका स्मरण हो आता है। बीच-बीच में आकर जैसे खड़ी हो जाती है। आज बहुत बार खड़ी हुई है। इसीलिये उसके सामने आकर मैं भी खड़ा हो गया हूँ—रहने दो—उसे खुला रहने दो !

—अच्छा रहने दो। किन्तु चल कर पोशाक उतारो, चाय पियोगे ?

—चाय यहीं भेज दो ! पोशाक अभी नहीं उतारूँगा। यह कण्ठ स्वर अलंघनीय है। सुरमा ने मन ही मन अपनी नींद को भला-बुरा कहा। वह सो गयी थी। नहीं तो गाड़ी से उतरते ही ज्ञानेन्द्रनाथ को दूसरी ओर ले गयी होती। इस घर में आने न देती। कई दिनों से अपने स्वामी के लिये उसकी दुश्चिन्ताओं का अन्त नहीं है।

दिन-दिन वे दूर से बहुत दूर होते चले जा रहे हैं—एक निर्जन वन

के मौन एकत्व में मग्न होते जा रहे हैं। वर्षा के इस दिगन्त व्यापी वर्षणोन्मुख मेघ-मण्डल के समान ही गम्भीर, म्लान और भारी होते जा रहे हैं। जीवन-ज्योति जैसे किसी विराट गम्भीर प्रश्न के अनिवार्य आविर्भाव से ढँक गयी है। अवश्य ज्ञानेन्द्रनाथ के जीवन में ऐसा होना नया नहीं है। ऋतु-परिवर्तन के समान यह उनके जीवन में बार-बार आया है। बार-बार इस मनुष्य के जीवन में कितने परिवर्तन हुए हैं। उफ !

किन्तु इतनी उदासीनता, ऐसी मौनमग्नता कभी देखी नहीं। उनको सबसे अधिक भय सुमति के चित्र से हो रहा है। वह कोई प्रश्न लेकर आया है ? कौन प्रश्न ? जो भी प्रश्न हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसके साथ वे भी जड़ित हैं। उनके अन्तर में इसका आभास मिल रहा है। वह व्याकुल हो गयी हैं। उनकी माँ ने उन्हें मना किया था। कान में बज रहा है। याद पड़ रही है। स्वयं भी वह दूर चली जाना चाहती थी। टेनिस फाइनल की जीत के बाद खींचे गये फोटोग्राफ पानेके बाद ही उसने निश्चय किया था कि सुमति ज्ञानेन्द्रनाथ से दूर हट जायगी। बहुत दूर। दूसरे दिन सबेरे ही कलकत्ता चली जायगी। वहाँ से पिताजी को अन्यत्र ट्रांस्फर के लिये लिखेगी या ज्ञानेन्द्रनाथ के ट्रान्स्फर के लिये लिखेगी। उसे पिता को बतलाने में कुछ संकोच नहीं था। किन्तु घटना-चक्र विचित्र है !

दूसरे दिन सबेरे ही सुना कि मुन्सिफ साहब का बँगला जलकर राख हो गया है। मुन्सिफ साहब की स्त्री जलकर मर गयी हैं, मुन्सिफ साहब अस्पताल में अज्ञान हैं, उनकी छाती और पीठ बहुत जल गयी है, बचेंगे कि नहीं, इसमें सन्देह है !

उसका सब बाँध टूट गया।

जिस प्रेम को कभी जीवन में न प्रकाशित करने का संकल्प किया था, वही प्रेम उस संकटमय मुहूर्त में उच्चस्वर में रुदन कर स्वयं प्रकट हो गया। वह जाकर ज्ञानेन्द्रनाथ के सिरहाने बैठ गयीं। वह उठेंगी, नहीं, नहीं उठेंगी। माँ से कहा—मुझसे उठने के लिये मत कहो, मैं नहीं जाऊँगी। जा नहीं सकती। उन्होंने कातर दृष्टि से पिता की ओर देखा।

पिता ने कहा – अच्छा तुम रहो!

माँ बोली—विचार कर देख, तू क्या कर रही है? जो अपनी स्त्री को बचाने जाकर इस प्रकार अपना प्राण संकट में डाल देता है, उसके मन में दूसरे के लिये स्थान ही कहाँ है?

जिन लोगों ने देखा था, आश्चर्यचकित होकर देखा था सुमति का हाथ पकड़ कर ज्ञानेन्द्रनाथ को बाहर निकलते। छप्पर से दबने के समय सुमति का नाम लेकर उनका आर्त चित्कार सुना था—सुमति! कहते हैं, यह बड़ा हृदय-वेधक आर्तनाद था!

ज्ञानेन्द्रनाथ के अच्छे हो जाने पर एकबार एकान्त में सुरमा ने कहा—तुम्हारे जीवन का मैंने सर्वनाश कर दिया है। मेरे लिये तुम्हारा सर्वनाश हुआ है। मुझे ग्रहण करो! सुमति का अभाव—

ज्ञानेन्द्रनाथ विस्मित हो गये। उन्होंने सुरमा की बात में बाधा देकर कहा—सुरमा, अभाव-बोध के सम्पूर्ण स्थान को मानो अग्निजिह्वा चटकर उसका रूप, रस स्वाद गन्ध सब लेकर चली गयी है!

उँगली से उन्होंने अपनी जली हुई छाती और पीठ दिखलायी।

—मेरी चाय—केवल चाय, यहाँ भेज दो, कृपया।

ज्ञानेन्द्रनाथ का मृदु गम्भीर कण्ठस्वर है। सुरमा चौंक पड़ीं। वह निष्ठुरतम वास्तविक अवस्था में लौट आयी। ज्ञानेन्द्रनाथ सुमति के आयल पैंटिंग के सामने खड़े हैं।

—ना। आर्त विनय के साथ सुरमा उनका हाथ पकड़ने गयीं।

—कृपाकर।

सुरमा का फैला हुआ हाथ अपने आप दुर्बल होकर नीचा हो गया। आदेश नहीं, आकुल भरा कण्ठस्वर। विद्रोह करने का मार्ग नहीं। उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

सुरमा बिना कुछ कहे बाहर चली गयीं।

सात

(क)

ज्ञानेन्द्रनाथ स्थिर दृष्टि से चित्र की ओर देख रहे थे। उसमें यदि क्षीणतम भाषा का स्पन्दन होता, तो उसे सुनने की चेष्टा की, इंगित रहने पर उसे समझने की चेष्टा की। सुमति की सुन्दर प्रतिमूर्ति में कहाँ असन्तोष और अभियोग की छाया पड़ी हुई है ?

—तुम आज अदालत में अस्वस्थ हो गये थे ?

ज्ञानेन्द्रनाथ ने घूम कर देखा।

चाय लेकर सुरमा खड़ी थीं। स्वयं लायी थीं, बेहरा साथ नहीं था!

—किसने कहा ?

—अर्दली ने कहा। सरकारी वकील के सवाल के समय तुम्हारे सिर में चक्कर आ गया था। तुमने उठ कर खास कमरे में सिर धोया था— ?

—हाँ। थोड़ा हँसे ज्ञानेन्द्रनाथ। कैसी विचित्र हँसी है! विषण्णता में ऐसी प्रसन्नता रह सकती है, इसे सुरमा ने कभी नहीं देखा था।

वे अकस्मात अस्वस्थ हो गये थे।

सरकारी वकील अभियुक्त के वकील के सवाल का जवाब दे रहे थे। वे गम्भीर आत्ममग्नता में डूब गये थे। वे निस्पन्द पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे थे। उनके दोनों नेत्रों की पुतलियाँ भी स्थिर थीं, वे शीशे की आँखों के समान जान पड़ती थीं। इलेक्ट्रिक फैन की हवा से उनके गाउन के किनारे काँप रहे थे, हिल रहे थे। उन्होंने मन ही मन उस दम घुट-

नेवाली अवस्था का स्वरूप अनुभव किया था। गणित के नियमों से अन्ध वस्तुशक्ति का निपीड़न है। गणित के नियम से एक ओर उसकी शक्ति घनीभूत होती है, दूसरी ओर जीवन की संग्रामशक्ति, सहन-शक्ति क्षीण से क्षीणतर होती जाती है। उसके अन्तिम मुहूर्त के सन्निकट के पूर्व—उस चरम मुहूर्त में—उसकी अन्तिम चेष्टा होती है। वहाँ ढेर का ढेर धुआँ ही धुआँ रहता है और निर्मल प्राणदायिनी वायु के अभाव से हृत्पिण्ड फट जाता है। सम्पूर्ण स्मृति, धारणा, विचारबुद्धि अस्पष्ट होकर मिल जाती है। अकस्मात् हवा बन्द हो जानेसे जिस प्रकार प्रकाश की शिखा बढ़ कर लालटेन की चिमनी में स्याही लेप देती है, उसकी ज्योति के चैतन्य को आच्छन्न कर के स्वयं भी बुझ जाती है—ठीक उसी प्रकार। ठीक उसी समय गिर पड़ी जली हुई फूस का ढेर, एक साथ सैकड़ों बन्धनों से बँधी हुई आग की दीवार के समान। अभियुक्त ने ठीक कहा है, उस समय मन की दशा का स्मरण नहीं हो सकता। अभागा अभियुक्त जल में डूबा जा रहा था, उसके भाई ने उसे निष्ठुर बन्धन में बाँध रखा था। जल की बीच गहराई में चला जा रहा था, स्वासवायु के रुक जाने से छाती फटी जा रही थी, वह उसी अवस्था में पीछे की ओर-आदिमतम जीवन चेतना की ओर—। अकस्मात् उनके कान में अविनाश बाबू की बात पड़ी।

(ख)

सरकारी वकील ने एटीवन धारा को अनुल्लिखित अंश की बात कही थी। अभियुक्त ने खगेन का गला दबाकर पकड़ा था, इस प्रकार उसने उस पर आघात किया है, साँस बन्द होकर मृत्यु का कारण

उपस्थित किया है, खगेन को मार कर स्वयं बच गया है। इसने खगेन को बचने का अवकाश नहीं दिया।

"माननीय, इसके अतिरिक्त एक बात और है। मेरे विद्वान बन्धु ने एटीवन धारा की एक नजीर का केवल आधा भाग उद्धृत किया है। उसके आधे भाग के सम्बन्ध में मैंने कहा है। मैं इस एटीवन धारा की एक और नजीर का उल्लेख करता हूँ। एक टूटे हुए जहाज के तीन नाविक कूलहीन समुद्र में तख्ते पर बह रहे थे। दो प्रौढ़ और एक किशोर। कूलहीन दिगन्त व्यापी समुद्र, इसपर भूख ! उसी निष्करुण निष्ठुरतम रूप में दिखायी पड़ी, जिसको हम आदिम उन्मादिनी शक्ति कहते हैं। "या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।" जिसके सामने विश्व-ब्रह्माण्ड का जीवन सिर नीचा कर लेता है। उस अवस्था में उन्होंने लाटरी डाली और उस किशोर की हत्या कर उसका माँस खाकर अपने को बचाया। उन्होंने उद्धार पाया। इसके बाद उनका विचार हुआ। उस विचार में अभियुक्तों के वकील ने जीवन के इस आदिम कानून की बात का उल्लेख कर कहा था—विचारपति को ध्यान रखना होगा, कि वे उस समय मानव सभ्यता के कानूनों से भी प्रबलतर कानून द्वारा परिचालित हो रहे थे।

किन्तु वहाँ विचारपति ने कहा है, जिस प्रकार आत्म-रक्षा, सहज प्रवृत्ति, साधारण धर्म है, उसी प्रकार आत्म-त्याग, परार्थ के लिये आत्म-विसर्जन भी मनुष्य की सहजात प्रवृत्ति, महत्तर धर्म है। माननीय, जो प्रकृति वस्तु-जगत् में अन्ध नियमों से परिचालित होती है, जन्तु-जीवन में वर्वर, हिंस्र, कुटिल, आत्मपरतन्त्रता में प्रकाशित होती है,

मनुष्य जीवन में उसी का प्रकाश दयाधर्म में, प्रेमधर्म में, आत्म वलिदान की महत् एवं विचित्र प्रेरणा से होता है। जन्तुओं की माँ सन्तान का भक्षण करती है। मानव-माँ आक्रमणोद्यत साँप के मुँह से सन्तान को बचाने के लिये उसका दंशन अपनी छाती पर ले लेती है। कहाँ है इसमें आत्म-रक्षा की वह जान्तव दीनता हीनता? यदि माँ अपनी प्राण-रक्षा के लिय सन्तान की हत्या करे, यदि पिता अपनी प्राण-रक्षा के लिये संतान का प्राण ले, यदि बड़ा भाई असहाय दुर्बल छोटे भाई की हत्या कर अपनी रक्षा कर महत्तम मानव धर्म को विसर्जन कर दे, यदि सबल दुर्बल की रक्षा न करे, तो इस मानव-समाज और पशु-समाज में भेद कहाँ है? मानव-समाज आदियुग से इस घटना के दिन तक अनेक समयों से अनेक दीर्घ मार्गों को अतिक्रमण कर अन्ध तमसाच्छन्नता से आलोकित जीवन-पथ पर चला आ रहा है, इस धर्म, इस प्रवृत्ति में आज साधना की आवश्यकता नहीं है, यह धर्म यह प्रवृत्ति आज रक्त की धारा में मिल गयी है। यह उसकी प्रकृति, उसके स्वभावधर्म का अंग बन गया है। हमारे पुराण में है, महर्षि माण्डव्य ने वाल्यावस्था में एक कीड़े को काँटा चुभाने का खेल किया था। युवावस्था में उन्हें राजकर्मचारी की भूल से सूली पर चढ़ना पड़ा था। उन्होंने धर्म से जाकर पूछा—किस अपराध से उन्हें यह दण्ड मिला? उस समय धर्म ने बाल्यावस्था की उस घटना का उल्लेख कर कहा, आघात-प्रतिघात की धाराओं में ही धर्म का विचार चलता है, यह क्रिया-प्रतिक्रिया के समान ही अमोघ और अनिवार्य है। माननीय न्यायाधीश, इस मानवधर्म के सम्बन्ध में कल्पना, इस देश में—"

ठीक इसी समय वे अस्वस्थ हो गये।

जैसे सारी अदालत घूम रही थी। उसी बीच बहुत पहले की बात स्मरण हो आयी। वे अस्पताल में पड़े थे। छाती और पीठ पर बेण्डेज बँधी थी। देह और मनमें घोर पीड़ा हो रही थी। सुरमा के पिता ने उनसे कहा—तुम क्या करोगे? क्या कर सकते हो? सम्भवतः सुमति के साथ जल कर मर सकते थे! किन्तु उससे क्या होता?

आज अभियुक्त को लक्ष्य कर जब अविनाश बाबू ने ये बातें कहीं, उस समय उनके सर्वांग में सिर से पैर तक शरीर की शिरा-शिरा, स्नायु-स्नायु में सुई की नोंक के समान शीतलता की प्रतिक्रिया से जैसे एक अद्भुत कम्पन बह गया। आज आकाश में मेघ नहीं है, धूप निकली है। स्काइ-लाइट के भीतर होकर प्रकाश के आने से अभियुक्त के पैरों के समीप एक गहरी काली छाया पुंजीभूत होकर जैसे बैठी हुई है। वे टेबिल पर सिर रखकर जैसे झुक गये। किन्तु एक ही मिनट के लिये, शायद उससे कम ही के लिये। साथ ही साथ वे बैठ गये और सिर उठा कर कहा—मि० मित्रा, थोड़ी देर ठहरिये, मैं आता हूँ। कृपया पाँच मिनट।

उन्होंने खास कमरे में जाकर स्नानघर में कल के नीचे सिर रख कर उसे खोल दिया। चार मिनट बाद फिर आकर आसन पर बैठ कर बोले—हाँ, आगे कहिये!

—धर्म के सम्बन्ध में मानव-कल्पना की कहानियाँ जितनी भी अवास्तविक हों, उनमें अन्तर्हित उपलब्धि, उनका मौलिक सत्य सदा अभ्रान्त होता है। अमोघ होता है। राष्ट्र समाज उसी नियम और नीति को विजयी बनाता है। वर्तमान क्षेत्र में—

अविनाश बाबू ने अद्भुत बुद्धिमत्ता के साथ सवाल किया। सारी अदालत अभिभूत हो गयी। सवाल समाप्त हो जाने पर भी कई मिनट तक सुई गिरने पर शब्द सुनाई पड़ने जैसी स्तब्धता छायी रही।

अभियुक्त आँखें बन्द कर स्तब्ध होकर खड़ा था।

इस स्तब्धता के बीच भी सभी के मनों में ध्वनित हो रहा था,—वर्तमान अवस्था में अभियुक्त यदि एक नारी के प्रेम में उन्मत्त होकर स्नेह-ममता, अपने लम्बे समय के संन्यास-धर्म को छोड़ने को उद्यत न होता, तो मैं निश्चयपूर्वक कहता कि आत्मरक्षा की आकुलता में उस छोटे भाई का गला दबाये रखने पर भी वह छोड़ देता, उसको बचानेकी चेष्टा करता। वैसी अवस्था में यदि यह काण्ड हो जाता, तो भी मैं कहता कि उसने जल में जब अपने छोटे भाई का गला दबा रखा था, उस समय केवल पाशविक आत्म-रक्षा की प्रेरणा से ही ऐसा किया था। किन्तु यहाँ अभियुक्त और मृत व्यक्ति भाई होने पर भी प्रणय के प्रतिद्वन्द्वी थे, वे इसी द्वन्द्व की तीव्रता में सम्पत्ति-विभाजन के लिये उद्यत हुए, इसमें प्रणय के प्रतिद्वन्द्वी पर क्रोध निरन्तर विद्यमान था, और वह समय पाकर अपना काम करता गया। बाल्यावस्था में चतुष्पद हत्या करने की चतुराई से उसने सबलतर हाथों द्वारा क्षण भर में कार्य समाप्त कर दिया—माननीय न्यायाधीश!

अविनाश बाबू का वक्तव्य अब भी ध्वनित हो रहा है—कानून ही अन्तिम बात नहीं है, पृथ्वी पर प्रकृति का नियम जिस प्रकार अमोघ है, मनुष्य के चैतन्य की महत् प्रेरणा भी उसी प्रकार अमोघ है। उससे भी वह बलवती, तेजशक्ति से प्रदीप्त है। पाशविक प्रवृत्ति की तमसा को नाश करने के लिये उसकी उत्पत्ति होती है। भाई ने भाई की, बड़े भाई ने छोटे

भाई की रक्षा की चेष्टा नहीं की, वरन् अपनी प्राण-रक्षा के लिये उसकी हत्या की। यह हत्या कलंकजनक और मनुष्य समाज में निष्ठुरतम पाप है।

(ग)

जूरियों ने सर्व सम्मति से अभियुक्त को दोषी घोषित कर दिया। अभियुक्त भी जान पड़ता है, अविनाश बाबू की वक्तृता से अभिभूत हो गया था, अन्यथा उसका मन विचित्र था। उसके नेत्र से जल निकल पड़ा। उसने अकस्मात् कठघरे की रेलिंग पर सिर रख कर फफक-फफक कर रोना शुरू कर दिया।

उनको उस समय उसकी ओर देखने का अवकाश नहीं था। वे सामने की ओर दृष्टि रख कर फैसला सुना रहे थे—मैं जूरियों के निर्णय से सहमत हूँ और अभियुक्त के अपराध के सम्बन्ध में निश्चित निर्णय पर पहुँच कर—

फिर वे क्षण भर के लिये स्तब्ध हो गये। हठात् उनके नेत्र सामने की दीवार पर पड़े—अभियुक्त की वही छाया आधी फर्श और आधी दीवार पर पड़ी थी और एक टेढ़े-सीधे काले प्रश्न के चिह्न के समान खड़ी हो गयी थी। किन्तु क्षण भर में ही उन्होंने आत्मसम्वरण कर लिया।

फैसला दिया, आजीवन निर्वासन का। ट्रांसपोर्टेशन फार लाइफ का। साथ ही साथ विशेष धारा के अनुसार इस अस्वाभाविक अभियुक्त के प्राणान्तकर अवस्था में घटना होने का उल्लेख कर राष्ट्रपति की दया पाने के विचार के लिये सिफारिश की है।

अदालत से आकर सरासरी घर में प्रवेश कर आफिस में बैठे। दीवार

पर पड़ा हुआ वह प्रश्न चिह्न कल छाया के समान था, आज स्पष्ट गहरी काली स्याही में लिखे हुए प्रश्न की भाँति सामने खड़ा हो गया। सुमति के साथ उन्होंने अपराध किया है? किया है? किया है? ऐसा न होने पर चित्र ढँका क्यों रहता है? क्यों? क्यों?

आज बहुत समय पश्चात् अकस्मात् उन्होंने भगोड़े आत्म गोपनकारी की दुस्सह अवस्था का अनुभव किया।

इसलिये घर आने पर सीधे सुमति के चित्र के समीप गये और परदा हटाकर सामने खड़े हो गये। बोलो अपना अभियोग! मेरा भय कहाँ है? बोलो! बोलो! बोलो!

चाय के कप की चुस्की लेकर ज्ञानेन्द्रनाथ ने एक दीर्घ विश्वास छोड़ी। उसी में मिल गयी, उनके मुख की वही विचित्र, एक ओर विषण्ण और प्रसन्न हँसी। सुरमा उनकी छाती पर हाथ रख कर गाढ़े स्वर में बोलीं—डाक्टर बुलाऊँ?

—नहीं।

सिर में चक्कर आना स्वीकार करते हो, फिर भी डाक्टर बुलाने से मना करते हो?

—कहता हूँ। मेरा शरीर खराब नहीं है। तुम जानती हो, मैं मिथ्या नहीं बोलता। वही सुमति; सुमति हठात् आकर मेरे सामने खड़ी होगयी थी। सिर में चक्कर आ गया था।

चाय का कप टेबिल पर रखकर ज्ञानेन्द्रनाथ सिर नीचा कर घरमें घूमने लगे। सुरमा मिट्टी की पुतली के समान टेबिल के कोने पर हाथ का भार देकर खड़ी रहीं।

हठात् एक समय ज्ञानेन्द्रनाथ को ख्याल हुआ घर में सुरमा अब भी है। उन्होंने कहा—अब भी खड़ी हो ? नहीं। खड़ी न रहो। जाओ, बाहर जाओ; खुली हवा में; मुझे आज के लिये छुट्टी दो। आज के लिये।

यदि सुरमा साधारण स्त्री होतीं तो रुलाई रोकते-रोकते दौड़कर बाहर चली जातीं। किन्तु सुरमा थीं अरविन्द चटर्जी की पुत्री, ज्ञानेन्द्रनाथ की स्त्री। वह नीरव होकर धीरे-धीरे चली गयीं। लान पर आकर अहाते की छोटी दीवार पर भार देकर पश्चिम ओर डूबते हुए सूर्य को देखते-देखते खड़ी रहीं।

सूर्य को साक्षी रख कर दो निःशब्द अश्रुधारा गिरनी शुरू हो गयी। उनके जीवन का प्रकाश भी क्या सूर्यास्त के साथ ही अस्त हो जायगा ? चिरदिन के लिये अस्त हो जायगा ?

क्वाय ! ज्ञानेन्द्रनाथ का कण्ठ स्वर सुन पड़ा।

(घ)

ज्ञानेन्द्रनाथ ने अविश्रान्त भाव से चक्कर किया। उनके मन में कई बातें विचित्र रूप से घूम गयीं।

माण्डव्य धर्मके विधान में परिवर्तन करने आये थे।

पशु पशु की हत्या करके खाता है। द्वेष करके भी अकारण हत्या करता है। वह उसका धर्म है। उसके धर्म की अधिष्ठात्री देवी तामसी है। धर्म, वहाँ तुम्हें दण्ड देने का अधिकार नहीं है। वह अनुताप की यातना सुई की नोंक बराबर भी अनुभव नहीं करता। मानव-जीवन की तमसा

में चैतन्य का प्रकाश जल रहा है। उसी चैतन्य में पहुँचने के पहले मुहूर्त तक वह सब नियमों के परे होता है। मैं तुम्हारे विधान में संशोधन करता हूँ। पाँच वर्ष तक मनुष्य अपराध और दण्ड से परे है।

उन्होंने विधान धर्म अवश्य मान लिया था।

आधुनिक युग में मनुष्य ने उस विधान का फिर संशोधन किया है।

दण्डविधि का निर्देश है कि सात वर्ष तक मनुष्य अपराधबोध और दण्डविधि के बाहर रहता है। पाँच वर्ष बढ़ कर सात वर्ष हो गया है। महातमसा की शक्ति की प्रचण्डता का निर्णय कर सिहर उठता है। मनुष्य भूल अवश्य करता है। काया के साथ छाया के समान उसका अस्तित्व है। किन्तु अब भी क्या— ?

अब भी क्या मानव के चैतन्य ने सात वर्ष आयु की अवधि उल्लंघन नहीं की है ?

अब भी क्या उसने आदिम प्रकृति के अन्ध नियमों के प्रभाव के सम्मुख असहाय होकर आत्मसमर्पण की दुर्बलता दूर करने योग्य बल संचय नहीं किया है ? प्रागैतिहासिक मानव मस्तिष्क की गठन के साथ आज के मनुष्य का कितना प्रभेद है !

गोली खाया हुआ मरणोन्मुख मनुष्य आज अक्रोधमें राम नाम उच्चारण कर सका है। निष्ठुरतम अत्याचार में भी मनुष्य अन्याय के सामने नत नहीं होता; मृत्यु वरण करता है।

उल्लंघन क्यों नहीं किया है ?

उन्होंने स्वयं किया है—

उन्होंने सुरमा से प्रेम किया था, किन्तु सुमति के साथ कोई विश्वास-

घातकता नहीं की। प्रकृति के आवेग में एक बार भी नहीं कहा कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। मन में उसके न पाने की वेदना थी, वह वेदना भी उन्होंने छाती में ही छिपा रखी थी। किन्तु उसे पाने की इच्छा गोपनतम अन्तर में भी प्रकाशित होने नहीं दी।

उनके दोनों नेत्रों की दृष्टि अस्वाभाविक उज्ज्वल है।

वे फिर सुमति के चित्र के सामने आकर खड़े हो गये। उस पर अच्छी तरह प्रकाश नहीं पड़ रहा है, दिखाई नहीं पड़ता है। उन्होंने पुकारा—न्याय।

—चित्र को उतार दो। उस चेयर पर रख दो।

प्रकाश के समाने रख दिया और उसके नेत्रों में नेत्र रख कर स्थिर भाव से ज्ञानेन्द्रनाथ खड़े हो गये।

क्लान्त चिन्ताप्रखर मस्तिष्क में जैसे तूफान चल रहा था। दूसरी ओर हृदय के भीतर उन्होंने एक कम्पन का अनुभव किया। उन्होंने प्राणपण से अपने को संयत एवं स्थिर रखना चाहा। तूफानी समुद्र में आपदग्रस्त जाहाज के नाविक की तरह। सब कुछ विलुप्त हो गया है, केवल वे और सुमतिका चित्र है। चित्र नहीं—वह चित्र आज उनके लिये चित्र नहीं है, वह जैसे जीवनमयी हो गयी है। प्रशान्त स्थिर नीला आकाश अकस्मात् जैसे मेघ पुंज के आवर्तन से, वायुवेग से, बिजली से, गर्जन से वाङ्मय मुखर हो जाता है, उसी प्रकार वह चित्र मुखर हो गया है। यह सब उनके चित्तलोक का प्रतिबिम्ब है यह वे जानते हैं। आकाश घन नहीं है,

आकाश में मेघ जमा हो जाता है, उसी प्रकार उस चित्र में निष्ठुर अभि-योगों की प्रखर मुखरता आकर जमा हो गयी है।

बारबार चित्र के सामने आकर खड़े हुए। फिर घर में आकर घूमने लगे। दीवार की क्लाक में पेण्डुलम के अविराम टक टक शब्द छोड़ कर और शब्द नहीं हैं। समय चल रहा है—इसी बीच रात अग्रसर हो रही है।

इस अभियोग का उसको उत्तर देना होगा। उसके उत्तर में इस निष्ठुर अभियोग की मुखरता को स्तब्ध करनी होगी। उनका उत्तर सुनने के लिये जैसे उनके अपने ही अन्तरलोक में लाख-लाख लोग उद्ग्रीव हुए हैं। उनके पीछे वह स्वयं खड़ी है।

—कहो, कहो सुमति, अपना अभियोग सुनाओ।

चित्र के सामने खड़े होकर उन्होंने प्रश्न किया—कहो!

उफ! कैसी गहरी वेदना सुमति के मुख और नेत्रों में है! इतना दुःख पाया है? दुःख तो मैंने नहीं दिया सुमति; अपना दुःख तुमने अपने ही तैयार किया। रेशम के कीड़े के समान अपने दुःख का जाल बुन कर उसी में तुमने अपने को आबद्ध कर लिया!

—क्या कहती हो? यदि मैं तुमसे प्रेम करता तो तुम्हारी ऐसी दशा न होती? मेरा मन, मेरा हृदय, मेरा प्रेम पाकर तुम तितली के समान सुन्दरी होकर सारे बन्धन काट कर बाहर होती? मन, हृदय, प्रेम न देने का मैं अपराधी हूँ?

—नहीं। स्वीकार नहीं करता। मन, हृदय, प्रेम तो मैंने देना चाहा

था—तुम ले नहीं सकी, अपने हाथ में नहीं पकड़ सकी। इस संसार में अपनी शक्ति से अधिक कोई एक तिल भी नहीं पाता।

वह उसे नहीं मिलता। ईश्वर की दुहाई देने पर भी वैसा नहीं होता। धर्म, मंत्र, शपथ किसी के बल से भी नहीं होता! हाथ पर रख देने पर हाथ पर से गिर जाता है। आँचल में बाँध देने पर वह स्वयं आँचल की गाँठ खोल कर खो जाता है। आँचल फाड़ देता है। हाँ, दे सकता है, एक वस्तु प्राप्य न होने पर भी मनुष्य मनुष्य को दे सकता है; दान—दया। वह भी मैंने दिया था। वह भी तुमने नहीं लिया!

चित्र के सम्मुख खड़े होकर ज्ञानेन्द्रनाथ ने सत्य ही बात कही थी। उनके नेत्रों की ज्योति अस्वाभाविक उज्ज्वल है। चित्र जैसे उनसे वार्तालाप कर रहा है। अशरीरी के आविर्भाव का उन्हें जैसे अनुभव हो रहा है। वे जैसे शब्दहीन बात सुनने को पा रहे हैं। वे जैसे विश्वजगत के साथ आमने-सामने खड़े हैं।

—क्या कहा? सुरमा से प्रेम किया था?

—न कर सकने के अतिरिक्त मेरी कोई गति ही न थी, सुमति। उसमें लेने की शक्ति थी, वह ले सकी है, उसने लिया है। यही क्यों? तुमने स्वयं न लेकर उसके हाथ पर फेंक दिया, दे दिया। तुमने ही अकारण सन्देह में मनुष्य की प्रीति को अभिशाप देने जाकर विचित्र नियम से आशीर्वाद देकर सार्थक प्रेम में परिणत कर दिया। तुम प्रीति को विष देकर मारने गयी, किन्तु वह प्रीति विष पान कर नीलकण्ठ के समान अमर हो गयी।

—क्या कहती हो? विवाह के समय मैंने वचन दिया था?

हाँ दिया था। उस वचन को मैंने अक्षरशः पालन किया। सुरमा से प्रेम

होने पर भी तुम्हारे जीवित रहने तक किसी दिन उसे वाक्य में प्रकाशित नहीं किया, अन्तर में प्रश्रय नहीं दिया, मन में कल्पना नहीं की। तुमने मेरे धैर्य पर आघात कर तोड़ना चाहा। मैंने छाती में उसको सेया, तोड़ने नहीं दिया। अन्त में तुमने आग लगा दी। वह आग घर में लगी। उसी आग में जलकर तुम राख हो गयी। मैं भी जला। किसी प्रकार बच गया, किन्तु मैं निर्दोष हूँ।

—क्या ?

अकस्मात् उनके दोनों नेत्र फैल गये। एक क्षण स्तब्ध रह कर फैले हुए नेत्रों की अपलक दृष्टि से चित्र की ओर देखते रहे। इसके बाद रूँधे गले से प्रश्न किया—

—क्या ?

—क्या कहती हो ?

—उस चरम मुहूर्त में मैंने तुम्हारे हाथ से अपना हाथ छुड़ा लिया था ? मैंने जो विपद् में, आपद में, आघात में, अकल्याण में तुम्हारी रक्षा करने की प्रतिज्ञा ईश्वर को साक्षी मानकर की थी ? वह प्रतिज्ञा—।

—हाँ। हाँ, प्रतिज्ञा की थी। उस प्रतिज्ञा की रक्षा नहीं कर पाया। स्वीकार करता हूँ। किन्तु क्या करूँ ? मैंने अपना जीवन तो संकट में डाल दिया था, किन्तु रक्षा नहीं कर पाया। क्या करूँ ? तुम्हारे अपने हाथ से तोड़े हुए शीशे के टुकड़े—।

—क्या ? क्या ? उसको निकाल कर तुम्हें छाती से लगाये हुए बाहर निकलने की चेष्टा मैंने नहीं की ? ना। ना, नहीं की। तुम्हारा जीवन बचाने के लिये मैं अपना जीवन विसर्जन कर सकता था—विसर्जन करना

उचित था, किन्तु वह मैं नहीं कर सका। मैंने विसर्जन नहीं किया! इसे मैं स्वीकार करता हूँ।

—क्या? पृथ्वी पर मनुष्य के चैतन्य को सात वर्ष पार किये हुए बहुत दिन बीत गये? हाँ बीत गये। बीत गये। अवश्य बीत गये। मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ।

उदासीन भाव से वे जैसे अशक्त हो गये। खड़े रहने की शक्ति उनमें नहीं थी। एक कुर्सी पर बैठ गये और सिर झुका कर टेबिल पर रखा। वे अदृश्य पृथ्वी की जनता के सामने जैसे घुटने टेक कर बैठना चाहते थे। फिर सिर उठाया, सुमति जैसे अभी कुछ कह रही है।

—क्या? क्या कहती हो?

—अधिक सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने के लिये कहती हो?

—कहती हो, नियति ने आग के घेरे को घनीभूत कर तुमको घेर लिया था, केवल एक छिद्रपथ था मेरे हाथ का सहारा? आकुल आग्रह से, परम विश्वास से उसी पथ में हाथ बढ़ा कर पकड़ा था; मैंने हाथ छुड़ा कर उस पथ को भी बन्द कर दिया था?—कर दिया था! कर दिया था! कर दिया था! मैं अपराधी हूँ। हाँ, मैं अपराधी हूँ।

उनकी चेतना जैसे विलुप्त होती जा रही थी। उन्होंने प्राणपन से अपने को सचेत रखने की चेष्टा की। वे अपने चैतन्य को अभिभूत होने देना नहीं चाहते थे। सब आवेगों, सब ग्लानियों की पीड़ाओं को सहन कर वे स्थिर रहेंगे।

उनको पता नहीं चला कि कितना समय बीत गया। घड़ी टक-टक

शब्द करती हुई चल रही थी। चल रही थी, उधर भी उन्होंने नहीं देखा। केवल यही मन में है—सुरमा आकर चली गयी है, ब्वाय ने भी कई बार दरवाजे के उस पार से शब्द कर उनका ध्यान खींचना चाहा था। किन्तु उन्होंने सिर नहीं उठाया। केवल अपने को स्थिर चैतन्य में अधिष्ठित करने की चेष्टा की। तपस्या की।

उन्होंने सिर उठाया। मुख और नेत्रों में प्रशान्त स्थिरता थी। विचार-बुद्धि अविचलित, मस्तिष्क स्थिर, उनका चैतन्य अविचल स्थिरतापूर्वक अकम्पित शिखा के समान दीर्घ ऊर्ध्वमुखी होकर जल रहा है। आदि-अन्तहीन मन का आकाश शरद के पूर्णचन्द्र के प्रकाश के समान दीप्ति से प्रसन्न और उज्ज्वल हो गया है। चारों ओर छुद्र-छुद्र असंख्य आलोक-विन्दुओं के समान जैसे किनके मुख प्रकट हो रहे हैं। किनके हैं?

जिनके न्याय किये हैं—उनके?

वे न्याय देखने आये हैं! दैवी न्याय! दैवी निर्णय!

किसी समाज या किसी राष्ट्र के दण्डविधान के अनुसार नहीं, जो दण्डविधि समस्त देशों और समाजों से परे हैं—सूक्ष्मतम, पवित्रतम, दैवी!

वे आत्म-समर्पण करेंगे। कल वे सब प्रकटकर कानून के सम्मुख आत्म-समर्पण करेंगे। वे जानते हैं—किसी भी देश के प्रचलित दण्डविधान में इसका न्याय नहीं है, यह अपराध नहीं है। कोई मनुष्य न्यायाधीश इसका न्याय नहीं जानता।

इसका न्याय केवल ईश्वर कर सकता है। ईश्वर को छोड़ कर कोई न्यायाधीश नहीं है। आज वे ईश्वर को मान रहे हैं। तो भी प्रकट रूप से आत्मसमर्पण करेंगे। इसके आगे—।

—सुरमा !

सुरमा कहाँ है ? सुरमा शायद पत्थर हो गयी है। हृदय चीर कर एक दीर्घ निश्वास अपने आप निकल आयी। धीमे पगों से बाहर निकल आये। सुरमा ही की खोज में चले थे। किन्तु बरामदे में आकर रुक गये। जान पड़ा न्यायसभा जैसे बैठ गयी है।

आधी रात की पृथ्वी ध्यानमग्ना के समान स्थिर और स्तब्ध है! आकाश में चन्द्रमा मध्यगगन में महाविराट की ललाट-ज्योति के समान दीप्तिमान हो रहा है। टुकड़े-टुकड़े बादलों के बीच वर्षा से उज्ज्वल गाढ़ा नीला आकाश-खण्ड भी निरपेक्ष महान न्यायाधीश के ललाट के समान प्रसन्न है। न्यायाधीश जैसे आसन ग्रहण कर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वे धीरे-धीरे भयभीत की तरह उतर कर प्रांगण के ठीक बीच में खड़े हो गये। सूक्ष्मतम विचार में अपनी अपराध-स्वीकृति के बीच से एक वैराग्यमय आत्म-समर्पण की प्रसन्नता उनके अन्तर में मेघरहित आकाश के समान प्रकाशित हो रही है। आकाश से भूमि तक अम्लान ज्योत्स्ना की ज्योतिष्मानता और महामौनता के बीच उन्होंने जैसे चित्त को भयभीत करने वाली एक महासत्ता का अनुभव किया। वे भयभीत हो गये। अथवा कई दिनों से वर्षा और वायु से कैसा दुर्योग चल रहा है।

सृष्टि के उसी आदि काल से यह तपस्या चल रही है। महाउत्ताप से खौलती हुई, महाअग्नि से दग्ध, प्रलय-झंझा से विक्षुब्ध विपर्यस्त, महा-वर्षण से प्लावित विध्वस्त पृथ्वी इस तपस्या के आशीर्वाद से आज शस्य-श्यामलता से प्रसन्ना, प्राणस्पन्दिता और चैतन्यमयी हो गयी है। वही तपस्यारता महासत्ता इस क्षण ज्ञानेन्द्रनाथ की अभिभूत सत्ता के सम्मुख

प्रत्यक्ष होकर प्रकट हुई। वह ध्यान निमीलित नेत्र उन्मीलित कर जैसे उनके वक्तव्य की प्रतीक्षा कर रही है।

ज्ञानेन्द्रनाथ ने आकाश की ओर दृष्टि जमा दी।

—मेरा न्याय करो, मुझे दण्ड दो। मुझे तमसा की समस्त ग्लानियों से उत्तीर्ण करो। मुझे मुक्ति दो! पीछे की ओर भींगी घास पर पैरों का शब्द हुआ। वह क्लान्ति से मन्द है। अन्तर की वेदना-व्यथा से मृदु है। सुरमा आ रही है। अश्रुमुखी सुरमा।

तो भी उन्होंने मुख नहीं फेरा।

आदिअन्तहीन व्याप्ति के बीच तपस्यारत ज्योतिष्मान इस विराट सत्ता के पादमूल में प्रणति रखकर उनकी अन्तरात्मा उस समय स्थिर, शान्त, स्तब्ध होती जा रही है। सुमति की भृकुटि विगलित होकर इस प्रसन्न महासत्ता में मिलती जा रही है।

सुरमा आकर उनके निकट खड़ी हो गयीं। उनके केश बिखर गये हैं, दोनों नेत्रों के कोनों में दो विशीर्ण जल-धाराओं के चिह्न हैं, शरीर पर सफेद साड़ी धारण किये हुए वह तपस्विनी की तरह लग रही हैं।